

आपका-आरोग्य आपके पास

डॉ. चंचलमल चोरडिया

जीवन क्या है?

जन्म और मृत्यु के बीच की अवस्था का नाम जीवन है। जीवन को समझने से पूर्व जन्म और मृत्यु के कारणों को समझना आवश्यक होता है। जिसके कारण हमारा जीव विभिन्न योनियों में भ्रमण करता है। जन्म और मृत्यु क्यों? कब? कैसे और कहाँ होती है? उसका संचालन और नियन्त्रण कौन और कैसे करता है? सभी की जीवन शैली, प्रज्ञा, सोच, विवेक, भावना, संस्कार, प्राथमिकताएँ, उद्देश्य, आवश्यकताएँ आयुष्य और मृत्यु का कारण और ढंग एक-सा क्यों नहीं होता? मृत्यु के पश्चात् अच्छे से अच्छे चिकित्सक का प्रयास और जीवन दायिनी समझी जाने वाली दवाईयाँ क्यों प्रभावहीन हो जाती हैं? मृत्यु के पश्चात् मृत शरीर के कलेवर को क्यों जलाया, दफनाया अथवा अन्य किसी विधि द्वारा समाप्त किया जाता है? सभी की आयु एक जैसी क्यों नहीं होती? किसी की बुद्धि, मन, इन्द्रियों और शरीर का पूर्ण विकास होता है तो कुछ जन्म से ही अविकसित, असन्तुलित, विकलांग अथवा अस्वस्थ क्यों होते हैं?

प्रकाशक

कल्याणमल चंचलमल चोरडिया ट्रस्ट, जोधपुर

चोरडिया भवन, जालोरी गेट के बाहर, जोधपुर-342003 (राज.)

फोन: 0291-2621454 (R), फैक्स: 2435471, मोबाइल: 94141-34606

E-mail: cmchordia.jodhpur@gmail.com, Website: www.chordiahealth.com

सहयोग राशि 25/-

मानव जीवन अमूल्य

मानव जीवन अमूल्य है। वस्तु जितनी मूल्यवान होती है, उसका उपयोग उसके अनुरूप करने वाला ही सच्चा ज्ञानी होता है। हमें चिन्तन करना होगा कि मानव जीवन के रूप में प्राप्त हम अपनी ऐसी अमूल्य क्षमताओं का अप्राथमिक, अनावश्यक कार्यों में दुरुपयोग और अपव्यय तो नहीं कर रहे हैं? जब तक अपनी क्षमताओं का सही उपयोग नहीं होगा, दुःख और रोग के कारणों को नहीं समझा जाएगा तब तक हमारा जीवन अमर्यादित, अनियन्त्रित, लक्ष्य-हीन, स्वच्छन्द, असंयमित होने से स्थायी स्वास्थ्य एवं समाधि को प्राप्त नहीं कर सकता। हीरे की पहचान करने वाला जौहरी होता है और पत्थर समझ दुरुपयोग करने वाला मूर्ख। हम स्वयं ईमानदारीपूर्वक निर्णय करें, हम अमूल्य मानव जीवन का उपयोग कैसे कर रहे हैं?

नाभि का केन्द्र में रहना क्यों आवश्यक?

यदि नाभि अपने स्थान से अन्दर की तरफ हो जाए, उस व्यक्ति का वजन दिन प्रतिदिन घटता चला जाता है और यदि किसी कारण नाभि अपने स्थान से बाहर की तरफ हो जाती है तो शरीर का वजन न चाहते हुए भी अनावश्यक बढ़ने लगता है। किसी कारण नाभि यदि अपने स्थान से ऊपर की तरफ चढ़ जाती है तो खट्टी डकारें, अपच आदि की शिकायतें रहने लगती हैं। कब्जी हो सकती है। परन्तु यदि नाभि अपने स्थान से नीचे की तरफ चली जाती है तो दस्त (Dysentery) की शिकायत हो जाती है। इसी प्रकार नाभि कभी दायें, बायें अथवा तिरछी दिशाओं में भी हट जाती है, जिससे शरीर में अनेक प्रकार के रोग होने लगते हैं। यदि सारे परीक्षण एवं पेशोलाजिकल टेस्ट करने के पश्चात् भी यदि रोग पकड़ में नहीं आता हो तो ऐसी परिस्थितियों में नाभि केन्द्र को अपने केन्द्र में लाने से अनेक रोगों में तुरन्त राहत मिलने लग जाती है।

भोजन का स्वास्थ्य पर प्रभाव

भोजन जीवन का आधार है। आधार हमेशा मजबूत होना चाहिए न कि मजबूरी, लापरवाही, अज्ञान अथवा अविवेकपूर्ण आचरण का। यह आवश्यक भी है और हमारे लिए चेतवनी भी है। आजकल अधिकांश व्यक्ति प्रायः भोजन शरीर की आवश्यकतानुसार नहीं करते अपितु मजबूरी और स्वाद की प्राथमिकता के अनुसार करते हैं। भोजन कितना ही संतुलित, पौष्टिक, सुपाच्य, स्वास्थ्यवर्द्धक क्यों न हो, परन्तु यदि खिलाने वाले का व्यवहार अच्छा न हो, उपेक्षापूर्ण हो, वाणी में व्यंग हो, तो ऐसा भोजन भी अपेक्षित लाभ नहीं पहुँचा सकता।

खाया हुआ भोजन तीन भागों में विभक्त हो जाता है। स्थूल भाग मल बनता है, मध्यम अंश से शरीर के अवयवों का निर्माण होता है। सूक्ष्म अंश से मन की पुष्टि होती है। जिस प्रकार दही के मंथन से उसका सूक्ष्म अंश ऊपर आकर मक्खन बन जाता है, जिसको और तपाया जाये तो घी बन जाता है। ठीक उसी प्रकार अन्न के भावांश से मन बनता है। इसी कारण होटल के खाने से पेट तो भर सकता है, पर मन नहीं। पेट भोजन से भर सकता है, परन्तु मन तो भोजन में होने वाले भावों से ही भरता है।

शल्य चिकित्सा का विकल्प भी संभव

ऊर्जा संतुलन द्वारा शरीर में आए अवरोधों को दूर किया जा सकता है। रक्त संचार सुव्यवस्थित एवं नियंत्रित किया जा सकता है। शरीर की प्रतिकारात्मक क्षमताओं को बढ़ाया जा सकता है। अंगों की अनावश्यक वृद्धि को रोका जा सकता है। शरीर में विजातीय तत्त्वों के जमा होने से यदि कोई गाँठ बनती है तो, इस पद्धति द्वारा उसको तोड़ा जा सकता है, बिखेरा जा सकता है, गलाया जा सकता है और संकुचित किया जा सकता है। आवश्यकता है रोग के कारण शरीर के अवयवों और उससे संबंधित ऊर्जाओं में जो असंतुलन हो जाता है, उसका पुनः संतुलन करना। जिस प्रक्रिया द्वारा रोग में वृद्धि हुई हो, ठीक उसके विपरीत प्रक्रिया द्वारा, पुनः संतुलन करना।

मानव शरीर स्वयं में परिपूर्ण

मानव का शरीर दुनियाँ की श्रेष्ठतम मशीन:-

मानव शरीर की संरचना विश्व का एक अद्भुत आश्चर्य है। उसके रहस्य को दुनियाँ का बड़े से बड़ा डॉक्टर और वैज्ञानिक पूर्ण रूप से समझने में असमर्थ है। शरीर के ऊपर यदि त्वचा न होती तो हमारी कैसी स्थिति होती? क्या हमने कभी कल्पना की? मस्तिष्क जैसा सुपर कम्प्यूटर, फोंफड़े एवं गुदें जैसा रक्त शुद्धिकरण यंत्र, हृदय जैसा निरन्तर गतिशील रक्त का पम्प, आमाशय, तिल्ली, लीवर जैसा रासायनिक कारखाना, आंख के समान कैमरा, कान के समान श्रवण यंत्र, जीभ के समान वाणी एवं स्वाद यंत्र, लिंफ प्रणाली जैसी नगर निगम के समान सफाई व्यवस्था, नाड़ी तंत्र के समान मीलों लम्बी संचार व्यवस्था, अन्तःश्रावी ग्रन्थियों के समान सन्तुलित, नियंत्रित, संयमित, न्यायिक, प्रशासनिक व्यवस्था, अवाञ्छित तत्वों के विसर्जन की व्यवस्था, प्रकाश से भी तेज गति वाला मन इत्यादि अन्यत्र निर्मित उपकरणों अथवा अन्य चेतनाशील प्राणियों में एक साथ मिलना असंभव होता है।

शरीर के ऊपर यदि त्वचा न होती तो हमारी कैसी स्थिति होती? क्या हमने कभी कल्पना की?

शरीर अपने लिये आवश्यक रक्त, मांस, मज्जा, हड्डियाँ, वीर्य आदि अवयवों का निर्माण चेतना के सहयोग से स्वयं करता है, जिसे अन्यत्र प्रयोगशालाओं में बनाना अभी तक संभव नहीं हुआ है। हमारे शरीर में पसीने द्वारा त्वचा के छिद्रों से पानी तो आसानी से बाहर आ सकता है, परन्तु पानी में त्वचा को रखने से, उन छिद्रों से पानी भीतर नहीं जा सकता। प्रत्येक शरीर का कुछ न कुछ वजन होता है, परन्तु चलते-फिरते किसी को अपना वजन अनुभव नहीं होता है। हमारे शरीर का तापक्रम साधारणताया 98.4 डिग्री फारेहनाइट होता है, भले ही बाहर कितनी ही सर्दी अथवा गर्मी क्यों न हो? चाहे, बर्फीले दक्षिणी अथवा उत्तरी ध्रुव पर जावें अथवा गर्मी में सहारा मरुस्थल जैसे गर्म स्थानों पर, शरीर का तापक्रम 98.4 डिग्री फारेहनाइट ही रहता है। हम देखते हैं जब कभी आंधी या तेज हवा चलती है, तब हल्के पदार्थ एक स्थान से दूसरे स्थान पर उड़कर चले जाते हैं। परन्तु हलन-चलन, उठने-बैठने एवं दौड़ने के बावजूद शरीर की पतली से पतली कोई भी नाड़ी अपना स्थान नहीं छोड़ती। यदि हम शीर्षासन करें तो हृदय अथवा कोई भी अंग अपना स्थान नहीं छोड़ता। शरीर के सभी अंग, उपांग, नाडियाँ, हड्डियाँ, हलन-चलन के बावजूद कैसे अपने स्थान पर स्थिर रहते हैं? वास्तव में क्या यह आश्चर्य नहीं है?

शारीरिक क्षमताओं का दुरुपयोग अनुचित:-

यदि कोई लाखों रुपये के बदले आपके शरीर का कोई अंग, उपांग अथवा इन्द्रियाँ आदि लेना चाहें तो यथा संभव कोई व्यक्ति नहीं देना चाहता। क्योंकि पैसों से उन अंगों को पुनः प्राप्त नहीं किया जा सकता। यहां तक लाखों रुपयों के बदले यदि आपको 15 मिनट श्वास रोकने का आग्रह करें तो क्या आप ऐसा करना चाहेंगे? नहीं! कदापि नहीं। मृत्यु के पश्चात् उस पैसे का क्या उपयोग? क्या हमने कभी सोचा कि ऐसी अमूल्य श्वास जो हमें प्रतिक्षण निःशुल्क मिल रही है, उसे हम बराबर तो ले रहे हैं अथवा नहीं? इतने अमूल्य मानव जीवन का उपयोग हम कैसे कर रहे हैं? यदि कोई रुपयों के नोटों के बंडल को चाय बनाने के लिए ईंधन के लिए जलादे तो हम उसे मूर्ख अथवा पागल कहते हैं। तब इस अमूल्य मानव जीवन की क्षमता का दुरुपयोग अथवा अपव्यय करने वालों को क्या कहा जाए? बुद्धिमान व्यक्ति के लिये चिन्तन का प्रश्न है? कहीं हमारा आचरण अज्ञानवश अपने आपको गरीब, दरिद्र, मान अरबपति बाप के भिखारी बेटे की तरह दर-दर भीख मांगने जैसा तो नहीं है? अतः ठीक उसी प्रकार जिस शरीर में इतने अमूल्य उपकरण हों, उस शरीर में अपने आपको स्वस्थ रखने की व्यवस्था न हो, क्या यह संभव है?

जरा चिन्तन करें, कहीं मानव जीवन रूपी दुनियां की सर्वश्रेष्ठ गाड़ी, हमारी स्वच्छन्द मनोवृत्तियों रूपी अनाड़ी ड्राइवर के हाथों में तो नहीं हैं? पेट्रोल की गाड़ी को केरोसिन से कब तक ढंग से चलाया जा सकता है? ठीक उसी प्रकार जीवन में सदगुणों रूपी ऊर्जा के रूप में उपलब्ध सनातन सिद्धान्तों पर आधारित प्राकृतिक जीवन शैली रूपी पेट्रोल के स्थान पर दुर्गुणों और अप्राकृतिक जीवन जी कर कैसे स्वस्थ रहा जा सकता है? स्वास्थ्य के प्रति सजग व्यक्तियों के लिए चिन्तन का प्रश्न है?

शरीर में रोग प्रतिरोधक क्षमता होती है:-

प्रत्येक अच्छे स्वचलित यंत्र में खतरा उपस्थित होने पर स्वतः उसको ठीक करने की व्यवस्था प्रायः होती है। जैसे बिजली के उपकरणों के साथ ओवरलोड, शार्ट सर्किट, अर्थ फाल्ट आदि से सुरक्षा हेतु फ्यूज, रीलें आदि होते हैं। प्रत्येक वाहन में ब्रेक होता है ताकि आवश्यकता पड़ने पर वाहन की गति को नियंत्रित किया जा सके। ठीक उसी प्रकार मनुष्य के शरीर में जो दुनियां की सर्वश्रेष्ठ स्वचलित, स्वनियंत्रित मशीन होती है, उसमें रोगों से बचने की सुरक्षात्मक व्यवस्था न हो तथा रोग होने की अवस्था में पुनः स्वस्थ बनाने की व्यवस्था न हो, यह कैसे संभव हो सकता है? आवश्यकता है, हमें अपनी क्षमताओं को जानने और समझने की तथा स्वविवेक, धैर्य, सहनशीलता एवं सदबुद्धि द्वारा उसका सही उपयोग करने की। हम जानते हैं कि स्वचलित उपकरणों में जितनी ज्यादा अनावश्यक छेड़छाड़ की जाती है उतनी ही उसके खराब होने की संभावनाएं बढ़ जाती है। ठीक उसी प्रकार साधारण रोगों में दुष्प्रभावों वाली दवाओं का सेवन कर हम स्वयं के लिए कहीं भविष्य में परेशानी का कारण तो नहीं बन रहे हैं?

सही निदान हेतु पूर्ण शरीर, मन और आत्मा को एक इकाई मानना आवश्यक:-

आज हमने उपचार हेतु शरीर को कई टुकड़ों में बांट दिया है। जैसे एक अंग का दूसरे किसी अंग से संबंध ही न हो। आंख का डॉक्टर अलग, कान, नाक, गला, दांत, हृदय, फेंफड़ा, गुर्दा, मस्तिष्क आदि सभी के विशेषज्ञ डॉक्टर अलग-अलग होते हैं। उपचार करते समय जब तक पूर्ण शरीर, मन व आत्मा को एक इकाई के रूप में स्वीकार न किया जायेगा, तब तक स्थायी प्रभावशाली उपचार, एक कल्पना मात्र होगी। आंखों के डॉक्टर एवं कान का डॉक्टर भौतिक कान तक सीमित रह उस पर गहनतम शोध में व्यस्त है। चेतना के मूल स्रोत पर उसका नियंत्रण नहीं है। चींटी और कुत्ते की घ्राणेन्द्रिय (सूँघने की शक्ति) इतनी तीक्ष्ण क्यों होती है? गिद्ध दृष्टि जैसी प्रत्येक मानव की दृष्टि क्यों नहीं होती? कोयल जैसी मधुरता प्रत्येक व्यक्ति की वाणी में क्यों नहीं विकसित होती? जब आंख बैठे-बैठे पूर्व में देखे गये अप्रत्यक्ष दृश्यों का स्मरण होते ही बन्द आंखों से देख सकती है, तो क्या उन दृश्यों के चिंतन से पड़ने वाले अनुकूल या प्रतिकूल प्रभाव आंखों को प्रभावित नहीं करेंगे? आंख, कान अथवा शरीर का सूक्ष्म से सूक्ष्म भाग इन्द्रियां मात्र भौतिक उपकरण ही नहीं हैं, परन्तु उसके साथ शरीर की जीवन्त चेतना, संवेदनाएं और मन की स्मृति, कल्पनाएं, अनुभूति आदि भी जुड़े हुए होते हैं, उसके ज्ञान के बिना आंख और कान जैसे शरीर के किसी भी भाग की सूक्ष्मतम जानकारी अधूरी ही होती है।

स्वास्थ्य हेतु स्वयं की सजगता सर्वाधिक आवश्यक:-

सजग व्यक्तियों को अपने रोग के कारणों की जितनी सूक्ष्मतम जानकारी होती है उतनी किसी भी चिकित्सक को नहीं हो सकती। इसी कारण बहुत से व्यक्ति उपचार करवाने के बावजूद पुनः स्वस्थ नहीं होते, जबकि चन्द रोगी बिना उपचार करवाए, प्राकृतिक नियमों का पालन कर स्वतः स्वस्थ हो जाते हैं। शरीर में रोग के अनुकूल दवा बनाने की क्षमता होती है और यदि उन क्षमताओं को बिना किसी बाह्य दवा के विकसित कर दिया

जाए तो उपचार अधिक प्रभावशाली, स्थायी एवं भविष्य में पड़ने वाले दुष्प्रभावों से रहित होता है। अतः अच्छे स्वास्थ्य हेतु जीवनचर्या व गतिविधियों पर पूर्ण संयम, अनुशासन और नियंत्रण आवश्यक होता है।

शरीर में स्वयं को स्वस्थ रखने की क्षमता होती है:-

हम देखते हैं कि जब किसी व्यक्ति की हड्डी अपना स्थान छोड़ देती है तो डॉक्टर उसको ठीक स्थान पर पुनः स्थित कर छोड़ देता है। जोड़ने का कार्य तो शरीर स्वयं ही करता है। शरीर अपने लिए आवश्यक रक्त का निर्माण स्वयं करता है। आज तक अति आधुनिक प्रयोगशालाओं में भी शरीर के लिए आवश्यक तत्वों का निर्माण संभव नहीं हो सका। मां के गर्भ में जब बच्चे का विकास होता है तो पूरे शरीर का निर्माण स्वयं शरीर के द्वारा ही होता है। ये सभी तथ्य हमें सोचने तथा चिंतन करने के लिए प्रेरित करते हैं कि शरीर में स्वयं को स्वस्थ रखने की क्षमता अवश्य होनी चाहिए। क्या मानव कभी चिंतन करता है कि मनुष्य के अलावा अन्य चेतनाशील प्राणी अपने आपको कैसे स्वस्थ रखते हैं? बहुत से रोगी बिना दवा लिए अपने आपको कैसे रोग मुक्त बना लेते हैं? इसका स्पष्ट मतलब है कि शरीर में स्वयं को स्वस्थ रखने की क्षमता होती है। चिकित्सा विज्ञान में इतने विकास के बावजूद रोग और रोगियों की संख्या में निरन्तर वृद्धि क्यों हो रही है? वास्तव में इस बात पर विश्वास करना होगा कि शरीर ही अपने आपको स्वस्थ रख सकता है। अच्छे से अच्छा अनुभवी चिकित्सक और दवा उसके बिना रोगी को ठीक नहीं रख सकते। अच्छी से अच्छी दवा और चिकित्सक तो शरीर को अपना कार्य स्वयं करने में सहयोग मात्र देते हैं। पीड़ा में राहत मिलना मात्र रोग का सम्पूर्ण उपचार नहीं होता। जिसका शरीर सहयोग करेगा, वही स्वस्थ होगा। स्वास्थ्य के प्रति स्वयं की सजगता व्यक्ति की पहली आवश्यकता है। यही सोच, स्वालंबी चिकित्सा पद्धतियों द्वारा स्वास्थ्य प्राप्त करने का मूलाधार होता है।

रोग हमारा मित्र है शत्रु नहीं

रोग कब होते हैं?

उपचार से पूर्व यह जानना और समझना आवश्यक है कि रोग क्या है? रोग क्यों, कब और कैसे होता है? उसके प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष कारण क्या हैं? शरीर की रोग प्रतिकारात्मक शक्ति कैसे बढ़ती है? और क्यों कम होती है? उसके सहायक और विरोधी तत्व क्या हैं? क्या शारीरिक रोगों का मन, विचार, भाव, वाणी अथवा आत्मा से प्रत्यक्ष-परोक्ष संबंध होता है? क्या उपचार करते समय उनसे संबंधित कारणों को प्राथमिकता दी जाती है? क्या उन कारणों की उपेक्षा तो नहीं होती अथवा उपचार मन और आत्मा के विकारों को बढ़ाने वाला तो नहीं होता है? उपचार हेतु उपयोग में लिए जाने वाले साधन, साध्य और सामग्री कितने पवित्र हैं? रोगी का आचरण और जीवनचर्या प्रकृति के सनातन सिद्धान्तों और नियमों के प्रतिकूल तो नहीं है?

रोग का मतलब शरीर के विकारों, दोषों, विजातीय अथवा अनुपयोगी तत्वों का जमा होकर, शरीर के विभिन्न तन्त्रों के स्वचलित, स्वनियन्त्रित कार्यों में अवरोध अथवा असंतुलन उत्पन्न करना होता है। वास्तव में प्राकृतिक सनातन नियमों का जाने अनजाने वर्तमान अथवा भूतकाल में उल्लंघन करना अर्थात् असंयमित, अनियंत्रित, अविवेकपूर्ण स्वच्छन्द आचरण के द्वारा जो शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक क्षमताओं का अपव्यय, दुरुपयोग करने से जो विकार उत्पन्न हों, असंतुलन की जो स्थिति बनती है, वही रोग होता है। ऐसी परिस्थिति में शरीर एवं मन की सभी क्रियाएं, अंग, उपांग, इन्द्रियां, तंत्र, अवयव आदि अपना-अपना कार्य स्वतंत्रता पूर्वक

सामान्य रूप से नहीं कर पाते। फलतः शरीर, मन और आत्मा के अवांछित, विजातीय, अनुपयोगी विकारों का विसर्जन बराबर नहीं होता। उनमें अवरोध उत्पन्न होने से पीड़ा, दर्द, वेदना, जलन, सूजन, विघटन, चेतना की शून्यता, तनाव, बैचेनी, भय, चिन्ता, अधीरता, असजगता, गलत दृष्टिकोण, चिंतन, जीवन के प्रति निराशा आदि के जो लक्षण प्रकट होते हैं, वहीं मिलकर रोग का परिवार कहलाते हैं।

रोग के मुख्य कारण:-

रोग होने के कारणों को मुख्य रूप से दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम स्वयं से संबंधित और दूसरा अन्य बाह्य वातावरण अथवा परिस्थितियों से संबंधित। जो रोग स्वयं से संबंधित होता है, उसका उपचार तो स्वयं के द्वारा ही संभव होता है। आज सबसे बड़ी समस्या अपने आप पर अनास्था की है। अपनी क्षमताओं से अनभिज्ञता की। हमारे चिन्तन, सोच का समस्त आधार भीड़, विज्ञापन, अन्धाःनुकरण, बाह्य वातावरण होता है, न कि स्वविवेक, सम्यक् चिन्तन। हम भूल जाते हैं कि करोड़ों सूर्यों की अपेक्षा व्यक्ति के लिए आंख का महत्व अधिक होता है।

प्रायः अधिकांश प्रचलित चिकित्सा पद्धतियों से रोग से संबंधित मानसिक कारणों को दूर करने की कोई दवा अथवा इंजेक्शन अभी तक नहीं बन पाया है और न उपचार करते समय उन कारणों को दूर कर मानसिक विकारों से मुक्त होने को प्राथमिकता ही दी जाती है। जब तक रोग के कारण बने रहते हैं, स्थायी उपचार कैसे हो सकता है? आज के विकसित चिकित्सा विज्ञान के पास प्रत्येक रोग का उपचार हो सकता हो परन्तु सभी रोगों का प्रायः एक सा उपचार नहीं होता। अंग्रेजी में एक कहावत प्रसिद्ध है- “All Diseases can be cured but not all patients, because they are very much impatience” अतः व्यक्ति के स्वयं पर निर्भर करता है कि वह रोग ग्रस्त जीवन जीना चाहता है या स्वस्थ जीवन? चाहने मात्र से तो स्वास्थ्य नहीं मिलता, अपितु स्वस्थ जीवन जीने के लिए सजगता, नियमितता, निरन्तरता के साथ सम्यक् पुरुषार्थ आवश्यक होता है।

विकार रोग का सूचक है:-

स्वास्थ्य का अर्थ होता है- विकारमुक्त अवस्था। रोग का तात्पर्य विकारयुक्त अवस्था यानि जितने ज्यादा विकार उतने ज्यादा रोग। जितने विकार कम उतना ही स्वास्थ्य अच्छा। विकार का मतलब अनुपयोगी, अनावश्यक, व्यर्थ, विजातीय तत्त्व होते हैं। जब ये विकार शरीर में होते हैं तो शरीर रोगी बन जाता है, परन्तु जब ये विकार मन, भावों और आत्मा में होते हैं तो क्रमशः मन, भाव और आत्मा विकारी अथवा अस्वस्थ कहलाती हैं। विकारी अवस्था का मतलब है विभाव दशा अथवा विपरीत स्थिति। जितने-जितने विकार, उतनी-उतनी विभाव दशा।

शारीरिक विकार के प्रभाव से शरीर के अंग, उपांग, अवयव, ग्रन्थियाँ, मस्तिष्क, इन्द्रियाँ आदि अपने निर्धारित कार्य हेतु असजग, असंतुलित अथवा निष्क्रिय होने लगती हैं जिससे शरीर में अनुपयोगी, अनावश्यक, विजातीय तत्व जमा होने लगते हैं। परिणाम स्वरूप शरीर की स्वचलित, स्वनियंत्रित प्रक्रिया में अवरोध और असंतुलन होने लगता है। जो जन-सामान्य की भाषा में रोग कहलाता है। फलतः शरीर में दर्द, पीड़ा, बैचेनी, तनाव, चिड़चिड़ापन, भय, अधीरता, निष्क्रियता, कमजोरी, दुर्बलता, चेतना की शून्यता आदि के लक्षण प्रकट होने लगे हैं। मानसिक विकारों के परिणामस्वरूप मन स्वच्छन्द और अनियंत्रित होने लगता है। चिन्तन और मनन गलत दिशा में होने लगता है तथा व्यक्ति अपने मनोबल एवं मानसिक क्षमताओं का अवमूल्यन करने लगता है। उसकी

प्राथमिकताएँ समस्याओं के स्थायी व प्रभावशाली समाधानों पर न होकर तत्कालीन अनुकूलताओं पर आधारित होने लगती हैं।

विभाव अवस्था रोग है:-

जैसा कि पूर्व में बतलाया गया है कि स्वास्थ्य का मतलब है स्व में स्थित हो जाना अर्थात् अपने निज स्वरूप में आ जाना अथवा विभाव अवस्था से निज स्वभाव में आ जाना। जैसे अग्नि के सम्पर्क से पानी उबलने लगता है परन्तु जैसे ही पानी को अग्नि से अलग करते हैं, धीरे-धीरे व स्वतः ही ठंडा हो जाता है। शीतलता पानी का स्वभाव है, गर्मी नहीं। पानी को वातावरण के अनुरूप रखने के लिए किसी बाह्य आलम्बन की आवश्यकता नहीं होती। उसी प्रकार शरीर में हड्डियों का स्वभाव कठोरता होता है, परन्तु किसी कारणवश कोई हड्डी नरम हो जाए, उसमें लचीलापन आ जाए तो रोग का कारण बन जाती हैं। मांसपेशियों का स्वभाव लचीलापन होता है परन्तु उसमें किसी कारणवश कठोरता आ जाए, गांठ हो जाए अथवा विजातीय तत्वों के जमाव के कारण अथवा आवश्यक रसायनों के अभाव के कारण यदि शरीर के किसी भाग की मांसपेशियों में लचीलापन समाप्त हो जाये अथवा क्षमतानुसार न हों तो रोग का कारण बन जाती हैं। शरीर का तापक्रम 98.4 डिग्री फॉरेनहाइट रहना चाहिए, परन्तु किसी कारणवश कम या ज्यादा हो जायें तो शरीर में रोग के लक्षण प्रकट हो जाते हैं। रक्त सारे शरीर में आवश्यकतानुसार ऊर्जा पहुँचाने का कार्य अबाध गति से करता है। अतः उसके संतुलित प्रवाह हेतु आवश्यक गर्मी एवं निश्चित दबाव आवश्यक होता है, परन्तु यदि हमारी अप्राकृतिक जीवन शैली से रक्त का बराबर निर्माण न हों अथवा दबाव आवश्यकता से कम या ज्यादा हो जाए तो सारे शरीर में प्राण ऊर्जा का वितरण प्रभावित हो जाता है। रक्त नलिकाओं के फैलने अथवा सिकुड़ने की संभावनाएँ बढ़ जाती हैं अर्थात् अपना स्वरूप बदल देती है। अतः रोग की स्थिति पैदा हो जाती हैं।

शरीर का गुण है कि जो अंग और उपांग शरीर के जिस स्थान पर स्थित हैं उनको वहीं स्थित रखना तथा हलन-चलन के बावजूद आगे पीछे न होने देना, शरीर में विकार उत्पन्न होने पर उसको दूर करना और पुनः अच्छा करना। अनावश्यक, अनुपयोगी, विजातीय तत्वों का विसर्जन करना। यदि कोई हड्डी टूट जाए तो उसे पुनः जोड़ना। चोट लग जाने से यदि घाव हो जाए तो उसको भरना तथा पुनः त्वचा पर आवरण लगाना। रक्त बहने अथवा रक्तदान आदि से शरीर में जो रक्त की कमी हो गई हो तो उसकी पूर्ति करना। उपर्युक्त एवं ऐसे अनेक कार्य शरीर के गुण एवं स्वभाव हैं परन्तु यदि किसी कारणवश शरीर इन कार्यों को बराबर न करे तो यह उसकी विभाव दशा कहलाती है अर्थात् रोगों का प्रतीक होती हैं।

शरीर विभिन्न तंत्रों का समूह है। जैसे ज्ञान तंत्र, नाड़ी तंत्र, श्वसन, अस्थि, मज्जा, लासिका, प्रजनन, विसर्जन आदि। शरीर में पीयूष, पिनियल, थायराइड और पेरार्थायराइड, एड्रीलिन, थाइमस, प्रजनन आदि अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ असक्रिय अथवा अतिसक्रिय हो जाती हैं तथा उनके कार्यों को संचालित और नियंत्रित करने के लिये बाह्य सहयोग या आलम्बन लेना पड़े तो यह शरीर की विभाव दशा होती है। अतः ये भी रोग का सूचक होते हैं।

रोग के प्रति जनसाधारण का द्रष्टिकोण:-

कोई भी रोग बाजार में नहीं मिलता। आकस्मिक दुर्घटनाओं अथवा जन्मजात रोगों को छोड़ कर रोगों के लिये प्रायः रोगी ही जिम्मेदार होते हैं। जन्मजात अथवा पैतृक रोगों में भी गर्भकाल में माता-पिता द्वारा रखी गई असावधानी, असंयम, उपेक्षावृत्ति ही मूल कारण होते हैं। साधारण से बीज से भी फसल प्राप्त करने के लिये किसान

कितनी सावधानी, देख-रेख और पुरुषार्थ करता है। तब मनुष्य जैसे व्यक्तित्व के निर्माण के प्रति माता-पिता, असजग, बेखबर, लापरवाह रहें तो वे अपने कर्तव्य के प्रति ईमानदार नहीं कहे जा सकते और उसका परिणाम होता है असक्त, रोगग्रस्त, दुर्बल व विकलांग संतान।

रोग हमारा मित्र अथवा शत्रु:-

जिन शारीरिक अथवा मानसिक रोगों का उपचार संभव होता है, प्रायः उनमें अधिकांश रोगों का कारण हम स्वयं होते हैं। रोग के संबंध में हमारी गलत धारणाएँ हैं। दर्द अथवा रोग के अन्य लक्षण हमें सजग करते हैं। अपने कर्तव्य बोध हेतु चिन्तन करने की प्रेरणा देते हैं। हमें चेतावनी देते हैं, कि हम अपने आपका निरीक्षण कर, अपने आपको बदले ताकि पीड़ा मुक्त, तनाव मुक्त जीवन जी सकें। हम स्वप्न में जी रहे हैं, यानी बेहोशी में हैं। दर्द अथवा रोग के अन्य संकेत उस बेहोशी को भंग कर हमें सावधान करते हैं, परन्तु सही दृष्टि न होने से हमने, उनको शत्रु मान लिया है। रोगी शरीर की आवाज सुनना और भाषा को समझना नहीं चाहता। उपचार स्वयं के पास है और खोजता है बाजार में। डॉक्टर और दवाइयों के द्वारा। फलतः दवा द्वारा रोग के कारणों को दबा कर खुश होकर क्षणिक स्वास्थ्य लाभ का प्राप्ति असफल प्रयास करता है। रोगी जितना डॉक्टर, दवा अथवा अपने शुभ चिन्तकों, अधूरे ज्ञान वाले सलाहकारों पर विश्वास करता है, उतना अपने आप पर एवं अपनी क्षमताओं पर विश्वास नहीं करता। यही सबसे बड़ा मिथ्यात्व है। गलत सोच एवं दृष्टिकोण है।

रोग, असजगता की चेतावनी:-

जब रोग का कारण स्वयं हों तो उपचार भी स्वयं के पास अवश्य होना चाहिये। शरीर की स्वचलित प्रणाली आंतें, गुर्दे, फेंफड़े और त्वचा शरीर के किसी भी भाग में एकत्र हुए अनुपयोगी, विजातीय अथवा अवांछित तत्वों को किसी न किसी प्रकार का सफाई अभियान चलाकर उसे जुखाम, बुखार, फोड़े, फुंसियां, कफ, मल-मूत्र अथवा पसीने आदि के रूप में शरीर से बाहर फेंक कर शरीर की विभिन्न कार्य प्रणालियों के कार्य को सामान्य रूप में लाने का प्रयास करती हैं। प्रकृति रोग के द्वारा यह दर्शाती है कि हम गलती कर रहे हैं। प्रारम्भिक अवस्था में प्रकट होने वाले रोग के लक्षण हमारे मित्र होते हैं। हमें हमारी असजगता के कारण भविष्य में होने वाले दुष्परिणामों की चेतावनी देकर सचेत करते हैं। यह तो हमारे शारीरिक प्रक्रिया का एक उपकारी एवं हितैषी कार्य होता है जिसका हमें सहयोग कर, रोग के कारणों का सजगता पूर्वक सम्यक् चिन्तन करना चाहिये। यह कोई शत्रुता पूर्ण कार्य नहीं, जिसे रोका जाये, विरोध किया जाये अथवा जिसे नष्ट किया जाये। कारण दूर किये बिना लक्षणों को दबाने से राहत भले ही मिल जाये, पूर्ण उपचार कदापि नहीं हो सकता। अतः वास्तव में रोग तो एक उपहार हैं, क्योंकि इसका उद्देश्य परोपकारी व रक्षाकारी होता है। कचरे को दबाकर अथवा छिपाकर रखने से उसमें अधिक सड़ांध, बदबू अथवा अवरोध की समस्या पैदा होगी। दीमक लगी लकड़ी पर रंग रोगन करने से बाहरी चमक भले ही आ जावे, परन्तु मजबूती नहीं आ सकती। औषधियों के माध्यम से इस सफाई अभियान को रोकने से तो विषैले अथवा दूषित तत्वों के शरीर के अन्दर रूके रहने से धीरे-धीरे शरीर की कार्य प्रणाली में अवरोध बढ़ता जायेगा, शरीर की रोग अवरोधक क्षमता कम होने लग जायेगी। जो भविष्य में विभिन्न गम्भीर रोगों को जन्म देने का कारण बनते हैं। अधिकांश मौसमी एवं वायरस रोगों का यही प्रमुख कारण होता है। वे चाहे मलेरिया, चेचक, चिकनगुनिया, डेंगू, प्लेग, स्वाइन फ्लू आदि किसी भी नाम से पुकारे जाते हों। दवाओं द्वारा लक्षणों को दबा देने से एक तरफ तो रोग के

कारण बने रहते हैं, दूसरी तरफ दवाएँ प्रायः शरीर की रोग प्रतिकारात्मक क्षमताओं को क्षीण कर देती हैं। परिणाम स्वरूप भविष्य में नित्य नवीन रोगों के पनपने की संभावनाएँ बनी रहती है।

प्राण ऊर्जा का संतुलन ही स्वास्थ्य होता है।

प्राण ऊर्जा क्या है ?

संसार में दो तत्त्व मुख्य हैं। प्रथम जीव, आत्मा और चेतना एवं दूसरा अजीव, जड़ या अचेतन। इन तत्त्वों से ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की संरचना होती है। इसी आधार पर ऊर्जा को भी मोटे रूप में दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। पहली चैतन्य अथवा प्राण ऊर्जा और दूसरी भौतिक ऊर्जा। जिस ऊर्जा के निर्माण, वितरण, संचालन और नियन्त्रण हेतु चेतना की उपस्थिति आवश्यक होती है, उस ऊर्जा को प्राण ऊर्जा और बाकी सभी ऊर्जाओं को जड़ अथवा भौतिक ऊर्जा कहते हैं। भौतिक विज्ञान प्रायः जड़ पर ही आधारित होता है। अतः उसकी सारी शोध एवं चिन्तन जड़ पदार्थों तक ही सीमित रहती है। जब तक शरीर में आत्मा अथवा चेतना का अस्तित्व रहता है, प्राण ऊर्जा क्रियाशील होती है। मानव जीवन का महत्त्व होता है, परन्तु उसकी अनुपस्थिति में अर्थात् मृत्यु के पश्चात् प्राण ऊर्जा के अभाव में मानव शरीर का कोई महत्त्व नहीं। अतः उसको जला अथवा दफना कर नष्ट कर दिया जाता है। आत्मा अथवा चेतना अरूपी है। अतः उसकी प्राण ऊर्जा भी अरूपी होती है तथा शरीर में अदृश्य मार्गों से प्रवाहित होती है, फिर भी उसके प्रभावों का अनुभव किया जा सकता है। इसी कारण चेतना के बिना आज का विकसित स्वास्थ्य विज्ञान शरीर के किसी भी अवयव, यहाँ तक बाल, नाखून, आंसू, पसीने जैसे, साधारण पदार्थों का भी निर्माण नहीं कर सकता।

प्राण ऊर्जा के मूल स्रोत:-

मां के गर्भ में आते ही कर्मों की स्थिति के अनुसार जीव को एक विशेष प्रकार की ऊर्जा प्राप्त होती है जिसके द्वारा जीव आहार को शरीर एवं इन्द्रियों में परिणत करता है। इस परिणमन करने वाली जीवन दायिनी मूल ऊर्जा को पर्याप्ति (Bio Potential Energy Source) कहते हैं। मनुष्य को आहार, शरीर, इन्द्रिय के अलावा श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन पर्याप्तियाँ भी प्राप्त होती है। श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति से ही वायुमण्डल से श्वसन योग्य पुद्गलों को ग्रहण कर जीव शरीर के लिये आवश्यक विशेष ऊर्जा में परिणत करता है। भाषा पर्याप्ति के कारण ही जीव भाषा योग्य सूक्ष्म पुद्गलों को ग्रहण कर बोलने की योग्यता प्राप्त करता है। जिन जीवों में भाषा पर्याप्ति का अभाव होता है, वे मुँह होते हुए भी बोल नहीं सकते। मन पर्याप्ति के प्रभाव से जीव में मनोवर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण कर द्रव्य मन की सहायता से चिन्तन मनन में परिणत करने की क्षमता प्राप्त होती है। जिन जीवों को मन पर्याप्ति प्राप्त नहीं होती, वे मनुष्य की भाँति मनन, चिन्तन, अध्ययन आदि नहीं कर सकते। उपचार करते समय जब तक चेतना के विकास के इस क्रम की उपेक्षा होगी, निदान अपूर्ण और उपचार अस्थायी होगा।

प्राण क्या है?:-

जिस शक्ति विशेष द्वारा जीव जीवित रहता है अर्थात् जीवन जीने की शक्ति को प्राण कहते हैं। कानों के द्वारा शब्दों को ग्रहण करने अथवा सुनने की शक्ति विशेष को श्रोत्र इन्द्रिय बल प्राण, आँखों के द्वारा देखने की शक्ति विशेष को चक्षु इन्द्रिय बल प्राण। नासिका द्वारा गंध ग्रहण करने की शक्ति विशेष को घ्राणोन्द्रिय बल प्राण, जीभ द्वारा स्वाद का अनुभव कराने की शक्ति विशेष को रसनेन्द्रिय बल प्राण, शरीर द्वारा ठण्डा-गरम,

कोमल-कठोर, हल्का-भारी आदि स्पर्श का ज्ञान कराने वाली शक्ति विशेष को स्पर्शोद्भूत बल प्राण, मन से चिंतन मनन करने की शक्ति को मनोबल प्राण, भाषा वर्णना के पुद्गलों की सहायता से वाणी की अभिव्यक्ति की विशेष ऊर्जा वचन, बल प्राण, शरीर के माध्यम से उठने-बैठने, हलन-चलन करने की विशेष शक्ति काय बल प्राण, श्वासोच्छ्वास वर्णना के पुद्गलों की सहायता से श्वास लेने और बाहिर निकालने की शक्ति विशेष श्वासोच्छ्वास बन प्राण तथा निश्चित समय तक निश्चित योनी में जीवित रहने की शक्ति विशेष आयुष्य बल प्राण कहलाती है। आयुष्य बल प्राण के अभाव में अन्य प्राणों का कोई अस्तित्व नहीं होता। प्रत्येक व्यक्ति की एक निश्चित आयुष्य होती है जिसका निर्धारण उसके पूर्व भव में ही हो जाता है। अन्य प्राणों की स्थिति बदल सकती है। क्षय के साथ-साथ उन प्राणों का निर्माण भी हो सकता है। प्राणों की विविधता के कारण ही प्रत्येक व्यक्ति के सुनने, देखने, चखने, सूंघने, चिंतन मनन करने, वाणी की अभिव्यक्ति आदि अलग-अलग होती है। कभी-कभी भौतिक उपचारों से कान, नाक, चक्षु, जीभ आदि इन्द्रियों के द्रव्य उपकरणों में उत्पन्न खराबी को तो दूर किया जा सकता है परन्तु उनमें प्राण ऊर्जा न होने से भौतिक उपचार सदैव सफल नहीं होते। इसी कारण सभी नेत्रहीनों को नेत्र प्रत्यारोपण द्वारा रोशनी नहीं दिलाई जा सकती। सभी बहरे उपकरण लगाने के बाद भी सुन नहीं सकते। मूर्ति में मानव की आंख लगाने के बाद भी उसमें देखने की शक्ति नहीं आ जाती।

प्राण ऊर्जा का अपव्यय हानिकारक:-

प्राण और पर्याप्तियों पर ही हमारा स्वास्थ्य निर्भर करता है। शरीर एवं प्राण का परस्पर संबंध न जानने पर कोई भी व्यक्ति न तो प्राणों का अपव्यय अथवा दुरुपयोग ही रोक सकता है और न अपने आपको नीरोग ही रख सकता है। आत्मिक आनन्द सच्ची शांति तो प्राण ऊर्जा के सदुपयोग से ही प्राप्त होती है। यही प्रत्येक मानव के जीवन का सही लक्ष्य होता है। प्रतिक्षण हमारे प्राणों का क्षय हो रहा है। अतः हमारी सारी प्रवृत्तियां यथा संभव सम्यक् होनी चाहिये। पांचों इन्द्रियों, मन, वचन, काया का संयम स्वास्थ्य में सहायक होता है तथा उनका असंयम रोगों को आमन्त्रित करता है। हवा, भोजन और पानी से ऊर्जा मिलती है परन्तु उनका उपयोग कब, कैसे, कितना, कहाँ का सम्यक् ज्ञान और उसके अनुरूप आचरण आवश्यक होता है? स्वाध्याय, ध्यान, कायोत्सर्ग भी ऊर्जा के स्रोत होते हैं, जिसका जीवन में आचरण आवश्यक होता है। प्राण ऊर्जा के सदुपयोग से शरीर स्वस्थ, मन संयमित, आत्मा जागृत और प्रज्ञा विकसित होती है।

शरीर से ही आत्मा और मन के भावों की अभिव्यक्ति होती है:-

मन शरीर के सभी विषयों को अभिव्यक्त करने की क्षमता रखता है। मन और वचन का अलग से कोई अस्तित्व नहीं होता। सभी बनते हैं चित के द्वारा। जो मन के लिये सामग्री चाहिये उसका आकर्षण काया के द्वारा ही होता है। मनन से पहले और मनन के बाद में भी मन नहीं होता। उसी प्रकार बोलने के पहले और बोलने के पश्चात् वाणी नहीं होती। भाषा और मन का अस्तित्व शरीर पर निर्भर होता है। जीव शरीर को उत्पन्न करता है। शरीर वीर्य को उत्पन्न करता है और वीर्य, मन, वचन और काया की हलन-चलन को उत्पन्न करता है। सारी शक्ति का केन्द्र, सारी शक्ति का संचालन, नियंत्रण और आत्मा की समस्त अभिव्यक्तियाँ शरीर के द्वारा ही होती हैं। शरीर हमारी सारी शक्ति का उत्पादक यंत्र है। जहां से ये शक्तियाँ विभिन्न मार्गों में प्रवाहित होती हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार आत्मा से शरीर और मन, मस्तिष्क प्रभावित होते हैं, उसी प्रकार शरीर की गतिविधियों से मन और

आत्मा भी प्रभावित होते हैं। जिस स्तर का रोग हो उसके अनुरूप उपचार करने से ही स्थायी एवं प्रभावशाली परिणाम शीघ्र प्राप्त होते हैं।

प्राण ऊर्जा के असंतुलन का प्रभाव:-

जब शरीर में कोई रोग होता है तो उसका प्रभाव सारे शरीर में चारों तरफ प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से थोड़ा बहुत पड़ता है। जिस प्रकार विद्युत उपकरणों में जब क्षमता से अधिक वोल्टेज पर बिजली प्रवाहित होती है तो उस उपकरण के खराब होने की संभावना रहती है और यदि कम वोल्टेज पर बिजली प्रवाहित हो तो उपकरण पूर्ण क्षमता से कार्य नहीं करते। ठीक उसी प्रकार जब किसी अंग में प्राण ऊर्जा का प्रवाह आवश्यकता से कम अथवा अधिक हो तो ऊर्जा असंतुलन के कारण उस की ऊर्जा से संबंधित शरीर के अंग-उपांग रोग ग्रस्त हो जाते हैं। सारे शरीर में अन्य ऊर्जाएं भी असंतुलित होने लगती हैं। लम्बे समय तक ऊर्जा का असंतुलन बने रहने से शारीरिक स्तर पर मांसपेशियां, रक्त परिभ्रमण, श्वसन, पाचन, हृदय की धड़कन, नाड़ी की गति, विजातीय तत्वों के विसर्जन आदि प्रभावित होने लगते हैं। परिणाम स्वरूप मानसिक स्तर पर भूख प्यास, निद्रा, थकान, अरूचि, बैचेनी, तनाव, पीड़ा, दर्द, चिड़चिड़पन, मनोबल में कमी जैसी स्थितियां प्रकट होने लगती हैं। आत्मिक स्तर पर स्मरण शक्ति का विस्मृत होना, सम्यक् प्रवृत्तियों के प्रति अरूचि अथवा उपेक्षा भाव, इन्द्रियों और मन पर नियन्त्रण न रख पाना, स्वयं के लिये आवश्यक प्राथमिकता का ज्ञान एवं विवेक न रहना तथा उसके अनुरूप आचरण न कर पाने जैसी स्थिति बनने लगती है। स्वाध्याय, ध्यान, कार्यात्सर्ग में मन नहीं लगता। दूसरी तरफ ऊर्जा के असंतुलन के कारण, रक्त, मल-मूत्र आदि अवयवों के रासायनिक तत्वों में परिवर्तन होने लगता है। शरीर का बाह्य संतुलन भी प्रभावित होने से, चलने-फिरने, उठने-बैठने में तकलीफ तथा अन्य लक्षण प्रकट होने लगते हैं। कमजोरी अनुभव होने लगती है। इन्द्रियों की क्षमताएं क्षीण होने लगती हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि शरीर के विभिन्न अंगों में प्रवाहित प्राण ऊर्जा का संतुलन शरीर की मुख्य आवश्यकता है। जिसके असंतुलन से न केवल शारीरिक स्तर पर दुष्प्रभाव पड़ता है अपितु मानसिक, भावात्मक और आत्मिक स्तर भी प्रभावित होते हैं। अतः जो उपचार प्राण ऊर्जा के संतुलन के सिद्धान्त पर जितना अधिक आधारित होता है, वह उपचार उतना ही अधिक सनातन, व्यापक और प्रभावशाली होता है।

प्राण ऊर्जा के संतुलन बिना उपचार अपूर्ण:-

अधिकांश चिकित्सा पद्धतियां प्राण ऊर्जा के असंतुलन से मात्र शरीर पर पड़ने वाले प्रभावों को अपने ढंग से समझ, रोग का निदान और उपचार करती हैं। नाड़ी वैद्य नाड़ी की गति के आधार पर वात, कफ और पित्त की शरीर में स्थिति द्वारा निदान करते हैं। एलौपैथिक चिकित्सक मल-मूत्र के परीक्षणों तथा ई.सी.जी., सोनोग्राफी, एक्स-रे, सी.टी. स्कैनिंग, एम.आर.आई आदि के आधार पर शरीर के रोग का निदान करते हैं। मन, भाव और आत्मा के विकार निदान और उपचार करते समय प्रायः उपेक्षित होते हैं।

अधिकांश चिकित्सा पद्धतियां शरीर में विजातीय तत्वों की उपस्थिति को रोगों का एक मात्र कारण मानती हैं। आत्मिक विजातीय तत्वों की तरफ उनका ध्यान ही नहीं जाता। शरीर जड़ है। अतः बाजार से मिलने वाली दवाइयां, अन्य खाद्य पदार्थ और भौतिक उपकरणों की मदद से जड़ ऊर्जा तो मिल सकती है, पर प्राण ऊर्जा नहीं। ऐसी चिकित्सा पद्धतियां अधिक से अधिक शरीर को ठीक कर सकती हैं। मानसिक व आत्मिक रोगों का उपचार तो स्वयं की चेतना से उत्पन्न प्राण ऊर्जाओं से ही संभव हो सकता है। प्रत्यक्ष या परोक्ष हिंसा को प्रोत्साहन देने वाली

चिकित्सा पद्धतियां प्राण ऊर्जा का उल्टा दुरुपयोग ही करती है, अतः रोगी को स्थायी रूप से रोग मुक्त नहीं बना सकती।

स्वास्थ्य हेतु स्वयं की सजगता आवश्यक

पहला सुख निरोगी काया जानते-मानते और आवश्यक होते हुए भी आज का मानव कितना स्वस्थ एवं सुखी है? यह जनसाधारण से छिपा हुआ नहीं है। प्रत्येक मनुष्य जीवन पर्यन्त स्वस्थ रहना चाहता है, परन्तु चाहने मात्र से तो स्वास्थ्य प्राप्त नहीं हो जाता। मृत्यु निश्चित है। जन्म के साथ आयुष्य के रूप में श्वासों का जो खजाना लेकर हम जन्म लेते हैं, वह धीरे-धीरे क्षीण होता जाता है। जीवन के अंतिम क्षणों तक उस संचित, संगृहित प्राण ऊर्जा के प्रवाह को संतुलित, नियन्त्रित एवं सही संचालित करके तथा उसका सही उपयोग करके ही हम शांत, सुखी एवं स्वस्थ रहकर दीर्घ जीवन जी सकते हैं।

स्वास्थ्य हेतु शरीर की रोग प्रतिकारात्मक क्षमता आवश्यक ?

शरीर की प्रतिकारात्मक शक्ति क्यों और कैसे कम होती है? इसको बढ़ाने अथवा कम करने वाले तत्त्व कौन से हैं? वास्तव में प्राकृतिक नियमों का जाने अनजाने वर्तमान अथवा भूतकाल में उल्लंघन करने अर्थात् असंयमित, अनियमित, अनियन्त्रित, अविवेकपूर्ण, स्वच्छन्द आचरण के द्वारा शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक क्षमताओं का दुरुपयोग अथवा असंतुलन रोग होता है। जिसके परिणाम स्वरूप शरीर, मन और आत्मा ताल से ताल मिलाकर आचरण नहीं करते। शरीर की सभी क्रियाएँ, अंग, उपांग एवं अवयव अपना-अपना कार्य स्वतन्त्रतापूर्वक नहीं कर पाते। फलतः शरीर के अवांछित, विजातीय, अनुपयोगी विकारों का बराबर विसर्जन नहीं होता। उनमें अवरोध उत्पन्न होने से पीड़ा, दर्द, कमजोरी, चैतन्य-शून्यता, तनाव, बेचैनी आदि की जो स्थिति शरीर में उत्पन्न होती है, वही रोग कहलाती है।

रोग का कारण आत्म विकारों से:-

मनुष्य का शरीर अनन्त गुणधर्मी होता है। अतः हमें अनेकान्त दृष्टिकोण से उसको समझना होगा तथा रोग उत्पन्न करने वाले कारणों से बचना होगा। शक्ति की सबसे गहरी और प्रथम परत आत्मा पर होती है। पूर्वार्जित कर्मों के अनुसार ही इस जन्म में हमें प्रिय-अप्रिय, संयोग-वियोग, अनुकूल-प्रतिकूल, सुख-दुःख, शारीरिक स्थिति, चेतना का विकास, उच्च या नीच गोत्र, पीड़ाकारी अथवा रोग मुक्त, जीवन, सम्यक् या मिथ्या दृष्टि, सम्यक् ज्ञान या मिथ्या ज्ञान, वीतरागता अथवा आसक्ति, आयुष्य, बल, वीर्य, शारीरिक सहनन मिलते हैं। हमारी आत्मा अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन एवं अनन्त सुख से परिपूर्ण होती है, परन्तु कर्मों से आच्छादित होने के कारण उसका सही रूप प्रकट नहीं हो पाता। ज्ञानावरणीय कर्म के अनुसार हमारी प्रज्ञा होती है। दर्शनावरणीय कर्म के प्रभाव से हमें सोचने, समझने, विश्वास करने व चिन्तन की सही अथवा गलत दृष्टि मिलती है। वेदनीय कर्मों के अनुसार हमें साता-असाता, रोग-निरोग, सुख-दुःख की प्राप्ति होती है। आयुष्य कर्मों के आधार पर हमें आयुष्य मिलती है। मोहनीय कर्म राग द्वेष एवं आसक्ति अथवा अनासक्ति के भाव पैदा करता है। गोत्र कर्म के अनुसार हमें उच्च अथवा नीच कुल, जाति, परिवार, आसपास का वातावरण मिलता है। नाम कर्म के अनुरूप हमें शरीर का आकार एवं शक्ति प्राप्त होती है। शरीर का रंग, रूप, बनावट तथा शरीर, मन और इन्द्रियों की क्षमताएँ मिलती हैं। अन्तराय

कर्मा का उदय विकास व सुखद उपलब्धियों में अवरोध उत्पन्न करता हैं। जिसके परिणाम स्वरूप सभी अनुकूलताएँ होते हुए भी इच्छित लक्ष्य-प्राप्ति में कुछ न कुछ बाधा उपस्थित हो जाती हैं।

कर्मा की इन विसंगतियों का प्रभाव हम अपने आसपास के वातावरण में स्पष्ट अनुभव करते हैं। आत्मा पर आये इन कर्मा के आवरणों को मनुष्य जीवन में सम्यक् पुरुषार्थ द्वारा दूर किया जा सकता हैं। सारे कर्मा का क्षय होने से मनुष्य नर से नारायण, आत्मा से परमात्मा, भक्त से भगवान के रूप में सर्वज्ञ, सर्वदर्शी एवं अनन्त सुखी बन जाता है, अपने स्वभाव में स्थित हो जाता है। यही वास्तव में सम्पूर्ण स्वस्थता की अवस्था होती है। यही मानव जीवन का परम लक्ष्य होता है। जो आत्मोत्थान में जितना-जितना विकसित होता है, उतना-उतना ही आत्मबली बनता जाता है। रोगों की जड़ समाप्त होने लगती हैं, उपचार की आवश्यकताएं कम होती जाती हैं। आत्मा के विकार आत्मज्ञानी के मार्ग-निर्देशन में व्यक्ति के सम्यक् पुरुषार्थ एवं सम्यक् आचरण से ही दूर किये जा सकते हैं। अतः हमें स्वस्थ रहने के लिये आत्मा में विकार बढ़ाने वाली हिंसा, क्रूरता, अशांति, तनाव आदि अमानवीय पापकारी प्रवृत्तियों से बचना चाहियें।

रोग में मन की भूमिका:-

शक्ति एवं रोग की दूसरी परत मन से संबंधित होती है। मन का जितना विकसित स्वरूप मानव जीवन में प्राप्त होता है उतना अन्य किसी प्राणी में नहीं मिलता। मन से ही मनन, चिन्तन, कृति, विकृति, संकल्प, इच्छाओं, ऐषणाओं, भावनाओं का नियन्त्रण होता है। मन बड़ा चंचल होता है। उसकी स्वच्छन्द एवं अनियन्त्रित गतिविधियां अधिकांश रोगों की उत्पत्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। मन को संयमित, नियन्त्रित, अनुशासित रखने से अनेक रोगों से सहज ही बच जाते हैं। आज हम जितना ख्याल शारीरिक स्वच्छता, शुद्धता का रखते हैं, बाह्य पर्यावरण एवं प्रदूषण की चिन्ता करते हैं, क्या उतनी चिन्ता मन में उठने वाले क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कषाय तथा घृणा, हिंसा, क्रूरता, तिरस्कार, वासना, ईर्ष्या, द्वेष, निन्दा आदि बुरे विचारों के प्रदूषण की करते हैं? इन आवेगों से ही रोग बढ़ते हैं। मन का नियन्त्रण हमारी स्वयं की सजगता पर निर्भर करता है। इसी कारण एक जैसे रोग की स्थिति में एक व्यक्ति बहुत परेशान एवं बेचैन रहता है। हाय-हाय करता है जबकि दूसरा तनिक भी विचलित नहीं होता। स्वस्थ चिन्तन, मनन, स्वाध्याय, सकारात्मक सोच, सत्संगति, ध्यान एवं कार्यात्सर्ग द्वारा मन को अशुभ से शुभ, अनुपयोगी से उपयोगी प्रवृत्तियों में लगाया जा सकता है। जो स्वस्थ जीवन के लिये अति आवश्यक होता है।

शारीरिक लक्षणों पर आधारित रोग का निदान अपूर्ण:-

आत्मा और मन के पश्चात् रोग व शक्ति की तीसरी परत होती है शरीर की आन्तरिक क्रियाओं पर और अन्त में उनके लक्षण बाह्य रूप से प्रकट होते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि जितने रोग अथवा उनके कारण होते हैं उतने हमारे ध्यान में नहीं आते। जितने ध्यान में आते हैं, उतने हम अभिव्यक्त नहीं कर सकते। जितने रोगों को अभिव्यक्त कर पाते हैं, वे सारे के सारे चिकित्सक अथवा अति आधुनिक समझी जाने वाली मशीनों की पकड़ में नहीं आते। जितने लक्षण स्पष्ट रूप से उनकी समझ में आते हैं, उन सभी का वे उपचार नहीं कर पाते। परिणाम स्वरूप जो लक्षण स्पष्ट रूप से प्रकट होते हैं, उनके अनुसार आज रोगों का नामाकरण किया जा रहा है, तथा अधिकांश प्रचलित चिकित्सा पद्धतियों का ध्येय उन लक्षणों को दूर कर रोगों से राहत पहुंचाने मात्र का होता है। विभिन्न चिकित्सा पद्धतियां और उनमें कार्यरत चिकित्सक आज असाध्य एवं सक्रामक रोगों के उपचार के जो बड़े-बड़े दावे और विज्ञापन करते हैं, वे कितने भ्रामक, अस्थायी होते हैं, जिस पर पूर्वाग्रह छोड़कर सम्यक् चिंतन

करना आवश्यक हैं। जब निदान ही अधूरा हो, अपूर्ण हो तब प्रभावशाली उपचार के दावे छलावा नहीं तो क्या हैं? अतः उपचार करते समय जो चिकित्सा पद्धतियां शारीरिक व्याधियों को मिटाने के साथ-साथ मन व आत्मा के विकारों को दूर करती हैं, उन्हीं चिकित्सा पद्धतियों द्वारा स्थायी एवं प्रभावशाली उपचार संभव हो सकता हैं, इस तथ्य में हमें तनिक भी संदेह नहीं होना चाहिये। सत्य सनातन होता हैं। करोड़ों व्यक्तियों के कहने से दो और दो पांच नहीं हो जाते हैं। दो और दो तो चार ही होते हैं। अतः जिन्हें स्थायी रूप से रोग मुक्त बनना हो, उन्हें शरीर, मन और आत्मा को रोग ग्रस्त एवं विकारी बनाने वाले सभी कारणों से यथा संभव बचना चाहिये एवं दुष्प्रभावों तथा शरीर की प्रतिरोधक क्षमता कम करने वाले उपचार से दूर रहना चाहिये।

उपचार हेतु रोगी का दृष्टिकोण:-

आज चिकित्सा के बारे में असमंजस की स्थिति है। कोई रोग का कारण रासायनिक असंतुलन व वायरस अथवा विषैले कीटाणुओं को मानते हैं, तो कुछ वात, कफ एवं पित्त के असंतुलन को ही रोग का आधार बतलाते हैं। अधिकांश चिकित्सा पद्धतियों में चिकित्सक प्रायः एक पक्षीय चिन्तन के पूर्वाग्रहों से ग्रसित होते हैं। उनके चिन्तन में समग्रता व व्यापक दृष्टिकोण का अभाव होता है। जनसाधारण से ऐसी अपेक्षा भी नहीं की जा सकती कि वे शरीर, स्वास्थ्य एवं चिकित्सा पद्धतियों के बारे में विस्तृत जानकारी रखें। अधिकांश रोगियों को न तो रोग के बारे में सही जानकारी होती है और न वे अप्रत्यक्ष रोगों को रोग ही मानते हैं। जब तक रोग के स्पष्ट लक्षण प्रकट न हों, रोग सहनशक्ति से बाहर नहीं आ जाता, रोग की तरफ उनका ध्यान ही नहीं जाता। रोगी का एक मात्र उद्देश्य येन-केन प्रकारेण उत्पन्न लक्षणों को हटा अथवा दबाकर शीघ्रातिशीघ्र राहत पाना होता है। जैसे ही दर्द से आराम मिलता है, वह अपने आपको स्वस्थ समझने लग जाता है। रोगी रोग का कारण स्वयं को नहीं मानता और न अधिकांश चिकित्सक उपचार में रोगी की सजगता और पूर्ण भागीदारी की आवश्यकता भी नहीं समझते हैं। विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों की प्रभावशालीता के भ्रामक विज्ञापन एवं डॉक्टरों के पास रोगियों की पड़ने वाली भीड़ के आधार पर ही रोगी उपचार हेतु चिकित्सक का चयन कर उसके पास अपना आत्म समर्पण कर देता है। डॉक्टर पर उसका इतना अधिक अन्ध विश्वास हो जाता है कि रोग का सही कारण अथवा निदान की सत्यता मालूम किये बिना उपचार प्रारम्भ करवा शीघ्रातिशीघ्र राहत पाना चाहता है। रोगी चिकित्सक के द्वारा बताये पथ्य व परहेज और मार्गदर्शन का पूर्ण निष्ठा के साथ पालन भी करता है। परन्तु शरीर, मन और आत्मा पर उपचार से पड़ने वाले सूक्ष्मतरंग परिवर्तनों की तरफ पूर्ण रूप से उपेक्षा रखने के कारण, उपचार के बावजूद कभी-कभी शारीरिक रूप से भी स्वस्थ नहीं हो पाता और कभी तो दवा उसके जीवन का आवश्यक अंग भी बन जाती है।

उपचार हेतु रोगी की सजगता आवश्यक:-

वर्तमान में प्रायः उपचार हेतु रोगी एवं उसके हितेषियों का सर्वप्रथम प्रयास यथा शक्ति, सर्वमान्य प्रभावशाली समझी जाने वाली, तुरन्त राहत दिलाने वाली पद्धति से चिकित्सा करवाने का होता है। भले ही उसके दुष्प्रभाव पड़ते हों और अच्छी चिकित्सा पद्धति के मापदण्डों पर जो खरा नहीं उतरती हो? परन्तु कभी-कभी उपचार के बावजूद जब रोग से मुक्ति नहीं मिलती, तब एक के बाद दूसरी चिकित्सा पद्धतियों का आश्रय लेते रोगी को संकोच नहीं होता। परन्तु फिर भी जब रोग का उपचार न होने से वह निराश होकर ऐसी चिकित्सा पद्धति का भी आश्रय लेता है जिस पर उसका पूर्ण विश्वास नहीं, जिसका विज्ञापन नहीं। भले ही वह चिकित्सा के मापदण्डों के

अनुरूप ही क्यों न हो? प्रायः ऐसे रोगी चिकित्सक के सामने सर्वप्रथम अपनी लम्बी अर्न्तव्यथा सुनाते-सुनाते प्रश्न करता है-

1. क्या उस वैकल्पिक चिकित्सा पद्धति में उसके रोग का इलाज संभव है?
2. आपने ऐसे कितने रोगियों का उपचार कर स्वस्थ किया है?
3. मैं कितने दिनों में रोग से मुक्त हो जाऊँगा?

रोगी की ऐसी सजगता प्रशंसनीय है। यदि ऐसे ही स्पष्टीकरण ईमानदारी पूर्वक रोगी अपनी विश्वसनीय चिकित्सा वाले चिकित्सक से पूछने का साहस प्रारम्भ में ही जुटा लेता तथा डॉक्टर संतोषप्रद उत्तर से उसको संतुष्ट कर दें तो रोगियों पर जाने-अनजाने अनावश्यक प्रयोग नहीं हो सकते।

रोग के विभिन्न प्रभाव एवं लक्षण:-

रोग स्वयं की गलतियों से उत्पन्न होता है, अतः उपचार में स्वयं की सजगता और सम्यक् पुरुषार्थ आवश्यक है। जब तक रोगी रोग के कारणों से नहीं बचेगा, उसकी गम्भीरता को नहीं स्वीकारेगा तब तक पूर्ण स्वस्थ कैसे हो सकेगा? रोग प्रकट होने से पूर्व अनेकों बार अलग-अलग ढंग से चेतावनी देता है। परन्तु रोगी उस तरफ ध्यान ही नहीं देता। इसी कारण उपचार एवं परहेज के बावजूद चिकित्सा लम्बी, अस्थायी, दुष्प्रभावों वाली हो तो भी आश्चर्य नहीं? अतः रोग होने की स्थिति में रोगी को स्वयं से पूछना चाहिये कि उसको रोग क्यों हुआ? रोग कैसे हुआ? कब ध्यान में आया? रोग से उसकी विभिन्न, शारीरिक प्रक्रियाओं तथा स्वभाव में क्या परिवर्तन हो रहे हैं? इस बात की जितनी सूक्ष्म जानकारी रोगी को हो सकती है, उतनी अन्य को नहीं। उसके मल के रंग, बनावट व गंध में तो परिवर्तन नहीं हुआ? कब्जी, दस्त या गैस की शिकायत तो नहीं हो रही है? पेशाब की मात्रा एवं रंग और स्वाद में बदलाव तो नहीं हुआ? भूख में परिवर्तन, प्यास अधिक या कम लगना, अनिद्रा या निद्रा और आलस्य ज्यादा आना, पांच इन्द्रियों के विषयों रंग, स्वाद, स्पर्श, श्रवण, वाणी एवं दृष्टि की क्षमताओं में तो कमी नहीं आयी? रुचि-अरुचि में विशेष परिवर्तन तो नहीं हुआ? श्वसन में कोई अवरोध तो नहीं हो रहा है? स्वभाव में चिड़चिड़ापन, निराशा, क्रोध, भय, अधीरता, घृणा, क्रूरता, तनाव, अशान्ति तो नहीं बढ़ रही है? आलस्य एवं थकान की स्थिति तो नहीं बन रही है। दर्द कब, कहां और कितना होता है? क्या चौबीसों घंटे दर्द एकसा रहता है? सर्वाधिक और निम्नतम दर्द कब होता है? मन में संकल्प विकल्प कैसे आ रहे हैं, इत्यादि सारे रोग के लक्षण हैं। उपचार के तुरन्त पड़ने वाले प्रभाव की सूक्ष्मतम जानकारी रोगी की सजगता से ही प्राप्त हो सकती है तथा इन सभी लक्षणों में जितना-जितना सुधार और संतुलन होगा उतना ही उपचार स्थायी और प्रभावशाली होता है। मात्र रोग के बाह्य लक्षणों के दूर होने अथवा पीड़ा और कमजोरी से राहत पाकर अपने आपको स्वस्थ मानने वालों को पूर्ण उपचार न होने से नये-नये रोगों के लक्षण प्रकट होने की संभावना बनी रहती है।

स्वास्थ्य के प्रति सरकारी उपेक्षा:-

आज हमारे स्वास्थ्य पर चारों तरफ से आक्रमण हो रहा है। स्वास्थ्य मंत्रालय की नीतियों में स्वास्थ्य गौण हैं। भ्रामक विज्ञापनों तथा स्वास्थ्य के लिये हानिकारक प्रदूषित, पर्यावरण, दुर्व्यसनों एवं दुष्प्रवृत्तियों पर प्रभावशाली कानूनी प्रतिबंध नहीं हैं, अपितु वे सरकारी संरक्षण में पनप रही हैं। आज राष्ट्रीयता, नैतिकता, स्वास्थ्य के प्रति सजगता थोथे नारों और अन्धा:नुकरण तक सीमित हो रही है। परिणाम स्वरूप जो मांसाहार एवं **Fast Food** नहीं खिलाना चाहिये व खिलाया जा रहा है। जो शराब एवं ठण्डे पेय नहीं पिलाना चाहिये उसे सरकार पैसे के

लोभ में पिला रही है। जो काम-वासना, क्रूरता, हिंसा आदि के दृश्यों को सार्वजनिक रूप से टी.वी. पर नहीं दिखाया जाना चाहिये, मनोरंजन के नाम पर दिखाया जा रहा है। जो नहीं पढ़ाना चाहिये वह भ कभी-कभी पढ़ाया जा रहा है एवं जो हमारी संस्कृति, समाज एवं राष्ट्र के लिये **Sex Education** (यौन-शिक्षा) जैसी घातक, गतिविधियाँ हैं, वे निसंकोच करवाई जा रही है। आज रक्षक ही भक्षक हो रहे हैं। खाने में मिलावट, आम बात हो गयी है। सारा वातावरण पाश्विक वृत्तियों से दूषित हो रहा है। सरकारी तंत्र को सच्चाई जानने, समझने व उसकी क्रियान्विति में कोई रूचि नहीं है। सारे सोच का आधार है भीड़ एवं संख्या बल। क्योंकि जनतंत्र में उसी के आधार पर नेताओं का चुनाव और नीतियां निर्धारित होती हैं। फलतः उनके माध्यम से राष्ट्र विरोधी, जन साधारण के लिये अनुपयोगी, स्वास्थ्य को बिगाड़ने वाली कोई भी गतिविधि व्यक्तिगत स्वार्थवश आराम से चलायी जा सकती है। जन्म से पूर्व डॉक्टरों की दवा लेने वाले, विभिन्न जांच प्रक्रियाओं से रोग होने पर बचपन से ही गुजरने वाले, भविष्य में संक्रामक एवं असाध्य रोगों से क्यों पीड़ित हो जाते हैं? उनकी रोग प्रतिकारात्मक क्षमता क्यों क्षीण हो जाती है? इस संबंध में आधुनिक चिकित्सकों का स्पष्टीकरण क्या है एवं उसमें कितनी यथार्तता है?

आज जापान में दो वर्ष से कम आयु वाले बच्चों पर इंजेक्शन लगाने पर क्यों प्रतिबंध है? विदेशों में जबरदस्ती दवा पिलाने और इंजेक्शन लगाने के विरुद्ध स्वयं सेवी संस्थाएं राष्ट्रीय आन्दोलन चला रही है। दवाओं के दुष्प्रभावों की क्षतिपूर्ति देने के कारण दवा कारखाने बंद हो रहे हैं। सरकारी अनदेखी के कारण हमारे यहां वे ही राष्ट्रीय कार्यक्रमों के रूप में सरकारी संरक्षण में नागरिकों की दुष्प्रभावों के प्रति असजगता के कारण तीव्र गति से चल रहे हैं। आज 80 प्रतिशत से अधिक बच्चों को पोलियो जन्म से नहीं होता परन्तु बुखार में आधुनिक डॉक्टरों की उपेक्षावृत्ति स्वरूप दी जाने वाली गलत दवा होती है। पोलियो पल्स का व्यापक अभियान हो या स्वास्थ्य हेतु आयोडीन युक्त नमक की अनिवार्यता एवं प्रभावशालीता का टी.वी. पर भ्रामक प्रचार, उचित नहीं। क्या कभी किसी ने उनके मूल अवयवों की प्राप्ति के स्रोतों को जानने का प्रयास किया? उनसे पड़ने वाले दुष्प्रभावों का अध्ययन किया? जहाँ साधन, साध्य और सामग्री अशुद्ध हो, अपवित्र हो, वहाँ दुष्प्रभाव न हो, यह कैसे संभव है? बचपन से ही रोग प्रतिकारात्मक क्षमता नष्ट करने का षडयंत्र चलाया जा रहा है। सरकार को स्पष्ट करना चाहिये कि पोलियो पल्स और आयोडिन नमक में क्या जानवरों के अवयवों का समावेश तो नहीं होता है? अहिंसक शाकाहारी प्रजा को जबरदस्ती मांसाहारी बनाने का प्रयास निंदनीय है। भ्रामक विज्ञापनों को सरकारी प्रचार-प्रसार अथवा संरक्षण मिल जाने मात्र से असत्य सत्य नहीं बन जाता। हमारा यह दुर्भाग्य है कि झूठे विज्ञापनों के प्रसारण पर इस देश में कोई कानूनी प्रतिबंध नहीं है। शाकाहारी गायों को मांसाहार खिलाने से चन्द वर्ष पूर्व इंग्लैण्ड में डंज बू रोग फैला, लाखों मुर्गियों का कल्ले आम करने का परिणाम चिकनगुनियां के रूप में सामने आया। आज एड्स बढ़ाने में कबूतरों का योगदान बताकर स्वार्थी लोगों द्वारा शांत प्रिय कबूतरों को समाप्त करने की योजनाएं बनायी जा रही है। दवाओं के दुष्प्रभावों से पीड़ित लोगों की राहत के लिये कानूनी प्रावधान नहीं है। अन्य देशों से प्रतिबंधित दवाओं को बेचने पर कोई कानूनी रोक एवं दंड की व्यवस्था नहीं है। आयोडिन नमक का प्रचार हो अथवा पोलियो निवारण कार्यक्रम स्वास्थ्य मंत्रालय द्वारा चलाये जा रहे रोग नियन्त्रक कार्यक्रमों से पड़ने वाले दुष्प्रभावों की निष्पक्ष न्यायिक जांच एवं क्षतिपूर्ति आवश्यक है।

सच्चा वैज्ञानिक कौन ?

आज के वैज्ञानिकों की ऐसी मान्यता है कि अधिकांश मनुष्य अपने ज्ञान का शतांश भाग भी विकसित नहीं कर पाते। हम अपनी क्षमताओं से कितने अपरिचित हैं जो चिंतन का प्रश्न है? शरीर मात्र ढाँचा ही नहीं, उसके साथ मन और आत्मा भी जुड़े हैं। मन और आत्मा का संचालन, नियन्त्रण चेतना से होता है। हमारी संवेदनाएँ, भाव, विचार, सोच, कर्म, नियति, स्वभाव, चिंतन, काल तथा जीवनचर्या उसे प्रभावित करते हैं। आत्मिक बल को भौतिक यंत्रों से नहीं मांपा जा सकता। इस कारण उस अनुभूत सत्य को नकारना, गलत, असत्य अवैज्ञानिक तत्वहीन मानना कौनसी बुद्धिमता है? आत्मा को प्रभावित करने वाले तथ्यों की उपेक्षा करने वाला अपूर्ण ज्ञान अपने आपको कैसे पूर्ण प्रभावशाली स्वास्थ्य विज्ञान होने का दावा कर सकता है?

अनुभूतियाँ स्वयं अपने आप में प्रमाण होती हैं जिन्हें भौतिक प्रयोग एवं परीक्षणों से नहीं परखा जा सकता। पानी पीने से प्यास बुझती है। अतः जन साधारण के लिये यह जानना आवश्यक नहीं कि प्यास क्यों और कैसे बुझती है? अतः जब तक चिकित्सक का दृष्टिकोण शरीर को स्वस्थ करने के साथ मन और आत्मा को स्वस्थ बनाने का नहीं होगा, उपचार अधूरा होगा। ऐसे उपचार और दृष्टिकोण को वैज्ञानिक मानना स्वयं के साथ विश्वासघात होगा जो कदापि उचित नहीं।

जो स्वयं अपूर्ण है व पूर्णता की बात करने का दावा कैसे कर सकता है? उसमें तो विरोधाभास ही होगा। जहाँ विरोधाभास होगा वहाँ हानि की संभावना रहेगी। हमें हमारा विवेक जाग्रत रखना है। हानि-लाभ, उपयोगी-अनुपयोगी, करणीय-अकरणीय की प्राथमिकताओं के आधार पर चिंतन कर आचरण करना होगा। स्वास्थ्य के प्रति यही सच्चा वैज्ञानिक दृष्टिकोण होता है।

उपचार हेतु रोगी की सजगता एवं सम्यक् पुरुषार्थ आवश्यक:-

ऐसी परिस्थितियों में हमें अपने स्वास्थ्य का खयाल स्वयं रखना होगा। अपनी क्षमताओं को समझ उनका सदुपयोग कर डॉक्टरों की पराधीनता को छोड़ना होगा। क्या हमारा श्वास कोई दूसरा ले सकता है? खाना अन्य कोई पचा सकता है? प्यास दूसरों के पानी पीने से शांत हो सकती है? हमारी निद्रा अन्य कोई ले सकता है? शरीर से निकलने वाले मल, मूत्र आदि अवांछित तत्वों का विसर्जन दूसरा कर सकता है? हमारा रक्त, मांसपेशियाँ, कोशिकाएँ, हड्डियाँ जैसी प्रतिक्षण बनने वाली वस्तुएँ भी शरीर स्वयं बनाता है। शरीर जब हृदय, फँफड़े, गुर्दे, लीवर, पाँचों इन्द्रियों का निर्माण स्वयं कर सकता है तब क्या उसे स्वस्थ नहीं रख सकता? मानव जीवन अमूल्य है। अतः अज्ञानवश उसके साथ छेड़छाड़ न हों। वर्तमान की उपेक्षा भविष्य की समस्या न बने। इस हेतु हमें अपने प्रति सजग, विवेकशील और ईमानदार बनना होगा। जो स्वयं लापरवाह, बेखबर है उसकी चिन्ता दूसरा कैसे कर सकता है?

क्या ऐलोपेथी ही मुख्य चिकित्सा पद्धति हैं?

अंग्रेजी चिकित्सा की विशेषताएं:-

अंग्रेजी चिकित्सा पद्धति के पास जन साधारण को आकर्षित करने हेतु सशक्त तर्क, निदान व उपचार हेतु काम में लिये जाने वाले नवीनतम वैज्ञानिक उपकरणों की सुविधाएं तथा रोग को शीघ्र दबाकर राहत पहुंचाने वाली कला है। अपने प्रयोगों, परीक्षणों के परिणामों की सफलता एवं उपलब्धियों के आंकड़ों को व्यवस्थित ढंग से

प्रस्तुतिकरण करने का सम्बल है। प्रत्यक्ष को प्रमाण की क्या आवश्यकता? शल्य चिकित्सा के क्षेत्र में तो उन्होंने अद्वितीय प्रगति की है। जिसके परिणाम स्वरूप आँखों की पुतलियों, गुर्दा, हृदय एवं शरीर के किसी भी खराब अनुपयोगी अंगों का प्रत्यारोपण संभव हो सका है। कृत्रिम ढंग से शारीरिक क्षमताओं को बढ़ाने तथा प्रक्रियाओं के संचालन में भी उन्होंने आंशिक सफलता प्राप्त की है। जैसे चश्मों के उपयोग से देखने की क्षमता सुधारना, श्रवण यंत्रों से सुनने की ताकत बढ़ाना, डायलासिस द्वारा रक्त का शुद्धिकरण, इंजेक्शन द्वारा शरीर में सीधे आवश्यक तत्व पहुँचाना, ऑक्सीजन द्वारा फेफड़ों के कार्यों में सहयोग देना, कृत्रिम दांत अथवा हाथ या पैर लगाना आदि सुविधाएं हैं, जो अन्य चिकित्सा पद्धतियों में इतनी सरल नहीं। स्पष्ट है कि अंग्रेजी चिकित्सा पद्धतियों की उपलब्धियों को नकारा नहीं जा सकता।

अंग्रेजी चिकित्सा की पोषक सरकारी नीतियां:-

उपरोक्त विशेषताओं के कारण ऐलोपैथिक चिकित्सा पद्धति भारत सहित अधिकांश देशों में सर्व मान्य हो रही है। उसे पूर्णतः वैज्ञानिक समझा जा रहा है। उन्हें सरकारी मान्यता, संरक्षण एवं पूर्ण सहयोग प्राप्त है। स्वास्थ्य मंत्रालय व चिकित्सा संबंधी नीति निर्माता एवं संचार माध्यम उनके प्रति पूर्ण रूचि लेकर खुलम-खुला प्रचार कर रहे हैं। दवा निर्माताओं के लुभावने, मायावी भ्रामक विज्ञापनों एवं दबाव के कारण स्वास्थ्य मंत्रालय जन-साधारण के स्वास्थ्य की चिंता छोड़ ऐलोपैथिक चिकित्सा के हितों का पोषक बन कर रह गया है। स्वास्थ्य पर प्रतिवर्ष खरबों रुपयों को खर्च करने के बावजूद आज रोग और रोगियों की संख्या निरन्तर क्यों बढ़ रही है? इस समस्या की तरफ उनका चिंतन सुसुप्त है। अंग्रेजी चिकित्सा पद्धति को आवश्यक, उपयोगी, वैज्ञानिक, विकासोन्मुख, प्रभावशाली तथा पौराणिक भारतीय चिकित्सा पद्धतियों को वैकल्पिक, अनावश्यक, अनुपयोगी, अवैज्ञानिक, अविकसित, सहयोगी चिकित्सा के रूप में बतलाने की साजिश हो रही है। अंग्रेजी चिकित्सा पद्धतियों की उपलब्धियों को बढ़ा चढ़ाकर प्रचारित किया जा रहा है तथा उसके दुष्प्रभावों को छिपाया जा रहा है। जो समस्याएँ एवं नये-नये रोग अंग्रेजी चिकित्सा के दुष्प्रभावों से उत्पन्न हो रहे हैं, उनका समाधान उन्हीं से पूछा जा रहा है।

स्वास्थ्य हेतु जन-साधारण की सोच:-

ऐसी परिस्थितियों में जन-साधारण अन्य प्रभावशाली चिकित्सा पद्धतियों को संदेहास्पद समझे तो आश्चर्य नहीं। विज्ञान एवं विज्ञापनों की चकाचौध में आज प्रायः मानव का आध्यात्मिक चिंतन सुषुप्त होता जा रहा है। चिकित्सक और दवा निर्माता रोग मिटाने के बड़े-बड़े दावों प्रस्तुत कर रहे हैं। फलतः जन साधारण की भीड़ उनसे भ्रमित हो, बिना सोचे समझे उनका अंधा:नुकरण करती है।

आज जन-साधारण को जितना डाक पर विश्वास है उतना ही अपनी अमूल्य क्षमताओं पर नहीं हो रहा है। वे प्रायः प्रत्येक सिद्धान्त, सत्य, तथ्य अनुभूति को तब तक स्वीकार नहीं करते, जब तक कि वे आधुनिक वैज्ञानिक मापदंडों पर खरा नहीं उतरते।

बहुत से व्यक्ति जो किन्हीं कारणों से ऐलोपैथी का उपचार लेना तो पसन्द नहीं करते परन्तु निदान तो आधुनिक चिकित्सकों के परामर्श एवं निर्देशानुसार करवाना आवश्यक समझते हैं। रोग में राहत मिलने के बाद तथा रोग के लक्षणों के समाप्त हो जाने के पश्चात् भी जब तक ऐलोपैथिक डॉक्टर रोग की अनुपस्थिति की पुष्टि नहीं करते, तब तक उनमें अन्य उपचार की विश्वसनीयता पर संदेह बना रहता है। श्रद्धा और समर्पण के अभाव में उपचार की प्रभावशालीता तो वैसे ही कम हो जाती है। ऐसे रोगी अपनी मानसिकता के कारण अन्य चिकित्सा

पद्धतियों का पूर्ण लाभ नहीं ले पाते। अन्य चिकित्सा के लम्बे चौड़े दावे करने वाले बहुत से चिकित्सक भी जिन्हें अपनी चिकित्सा के मौलिक सिद्धान्तों की जानकारी नहीं होती अथवा पूर्ण अनुभव नहीं होता, वे चिकित्सक भी आत्मविश्वास एवं चिकित्सा की प्रभावशालीता पर पूर्ण विश्वास न होने से स्वयं के रोगग्रस्त होने की स्थिति में अपनी चिकित्सा पद्धति से निदान अथवा उपचार करने के बजाय तात्कालिक राहत हेतु ऐलोपैथिक उपचार लेना पसंद करते हैं, तो उनके सारे दावे जन-साधारण को खोखले लगने लगते हैं। परिणाम स्वरूप जन-साधारण अन्य चिकित्सा पद्धतियों के प्रति जल्दी आकर्षित नहीं होता।

प्रभावशाली अन्य चिकित्सा पद्धतियों पर चिंतन आवश्यक ?

कोई चिकित्सा पद्धति अपने आप में पूर्ण नहीं होती और न कोई भी चिकित्सा पद्धति ऐसी है जिसमें कोई विशेषता ही न हों। अर्थात् जो अंग्रेजी चिकित्सा पद्धति के सिद्धान्त, मान्यताएँ, धारणाएँ हैं, वे ही संपूर्ण सत्य हों? बाकी सभी चिकित्सा पद्धतियों को अवैज्ञानिक, अविकसित, अनुपयोगी, अनावश्यक, बतलाकर उपेक्षा करना कदापि उचित नहीं। हम किसी बात पर विश्वास न करें परन्तु उस संबंध में बिना पूर्ण जानकारी अविश्वास करना भी उचित नहीं? ऐसे व्यक्तियों के चिंतन को वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता। जिस प्रकार यदि कोई गाँव का अशिक्षित व्यक्ति डॉक्टरों की भरी सभा में चिकित्सा विषयों पर अधिकारपूर्वक बोले तो उसकी बात का क्या महत्त्व, उसकी क्या सार्थकता? उसी प्रकार जिस विषय का ज्ञान न हों उस पर अभिमत देना नासमझी है। कारण चाहे जो हों, तथाकथित अच्छी प्रभावशाली स्वावलंबी मौलिक चिकित्सा पद्धतियां वर्तमान में सरकारी उपेक्षा की शिकार हैं। सरकार द्वारा न तो उन पर शोध को प्रोत्साहन दिया जा रहा है और न उनके प्रशिक्षण व उपचार व्यवस्था की तरफ सरकार का विशेष ध्यान ही जा रहा है। सरकारी मान्यता और सहयोग का तो प्रश्न ही नहीं। उनकी प्रभावशालीता, अच्छाइयों को बिना सोचे समझें, बिना अध्ययन किये नकारा जा रहा है। भले ही वे चिकित्सा के मापदंडों में सरकारी मान्यता प्राप्त वैज्ञानिक समझी जाने वाली आधुनिक अंग्रेजी चिकित्सा पद्धति से काफी आगे हों। मानों परीक्षा में 25 अंक प्राप्त करने वालों को सर्वश्रेष्ठ तथा 60 से 70 अंक प्राप्त करने वालों को अयोग्य घोषित किया जा रहा है। मैट्रिक पास व्यक्ति एम.ए. वालों को पढ़ाने की भूमिका निभा रहा हो। क्या स्वास्थ्य मंत्रालय से संबंधित नीति निर्माताओं ने उन पद्धतियों के विशेषज्ञों से परामर्श कर समझने का प्रयास किया? प्रकृति का यह मौलिक सिद्धान्त है कि रोग जिस स्थान, वातावरण एवं परिस्थितियों में उत्पन्न होता है, उसका उपचार उसी वातावरण, परिस्थितियों एवं धरती के अवयवों में समाहित होता है। अतः स्वावलम्बी, चिकित्सा पद्धतियों के सिद्धान्त, उपचार का तरीका भारत की जलवायु, संस्कृति व वातावरण के ज्यादा अनुकूल है। जिस पर पूर्वाग्रह छोड़ अनेकान्त दृष्टि से वर्तमान परिपेक्ष्य में पुनः शोध व व्यापक चिंतन आवश्यक है। आधुनिक चिकित्सकों को अन्य प्रभावशाली चिकित्सा पद्धतियों का सिद्धान्तिक ज्ञान कराया जाना चाहिये, जिससे चिकित्सकों का चिंतन बहुपक्षीय हो सकें।

विज्ञान का आधार क्या ?

विज्ञान का आधार होता है सत्यदृष्टि, सनातनदृष्टि, अनेकांतदृष्टि, समग्रदृष्टि। इसके विपरीत जिसमें आग्रह है, दुराग्रह है, एकान्त मान्यताओं एवं धारणाओं का पोषण होता है, मायावी आचरण है, वहां कितना ही विज्ञापन क्यों न हो वह सोच विज्ञान का नहीं हो सकता। विज्ञान की पहली शर्त है **“सच्चा सो मेरा न कि मेरा सो सच्चा।”** प्राप्त सूचनाओं, प्रमाणों तथा प्रयोगों एवं परीक्षणों से उपलब्ध आंकड़ों का व्यवस्थित लिपिबद्ध संकलन और प्रस्तुतिकरण भौतिक विज्ञान का एक पक्ष मात्र है। जब तक धर्म, कर्म, नियति, स्वभाव व काल के प्रभावों को

नकारा जाएगा, स्वास्थ्य विज्ञान का सत्य समझ में नहीं आयेगा। अध्यात्म की उपेक्षा करने वाला स्वास्थ्य विज्ञान अधूरा है, अपूर्ण है। विज्ञान के लिये सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक् आचरण आवश्यक होता है।

आधुनिक चिकित्सा पद्धति की विसंगतियाँ:-

चिकित्सा के क्षेत्र में लम्बे चौड़े दावों के बावजूद दुःख जो रोग का मूल कारण होता है, तनाव, भय, निराशा, अधीरता नकारात्मक सोच जो रोग के कारणों के जनक होते हैं, उनको मांपने, समझने और दूर करने का सर्व मान्य उपाय तक नहीं है। आधुनिक चिकित्सा में आत्मा, मन एवं भावों की उपेक्षा होने से निदान एवं उपचार आंशिक और अधूरा होता है। प्रायः प्रत्येक अंग, उपांग, अवयव व इन्द्रियों आदि के अलग-अलग विशेषज्ञ होते हैं। परिणाम स्वरूप उपचार शरीर को एक इकाई मान कर नहीं किया जाता है, जबकि शरीर के सभी तंत्रों में पूर्ण रूप से आपसी सहयोग होता है। प्रत्येक रोग का थोड़ा ज्यादा, प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष प्रभाव पूरे शरीर पर भी पड़ता है। टुकड़ों-टुकड़ों में शरीर का उपचार करने से उसका प्रभाव शारीरिक स्तर पर भी पूर्ण रूप से नहीं होता।

क्या उपचार हेतु सही निदान आवश्यक है ?

1. आधुनिक चिकित्सा पद्धति रोग का मुख्य कारण शरीर में वायरस अथवा रोग के कीटाणुओं को मानती है। मानव अनन्त शक्तिशाली होता है। उसमें अनन्त क्षमता होती है। क्या लाखों चूहे मिलकर किसी शेर को परेशान कर सकते हैं? हां यदि शेर को अपनी क्षमता का खयाल न हो, वह प्रमादी हो अथवा गहरी निद्रा में सोया हुआ हो, तो निश्चित रूप से उसे परेशानी हो सकती है। अन्यथा चूहे उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते। ठीक उसी प्रकार यदि हमारी प्रतिकारात्मक शक्ति अच्छी हो तो वायरस और कीटाणु हमारा क्या बिगाड़ सकते हैं? गन्दी बस्तियों में रहने वाले, रोजाना पाखाना ओर गटर, नालियों की सफाई करने वाले और प्रतिदिन अस्पताल में असाध्य एवं संक्रामक रोगियों के बीच रह कर सेवायें देने वाले चिकित्सकों और नर्सज आदि को तो इस मान्यतानुसार सदैव रोग ग्रस्त ही होना चाहिये? परन्तु इसमें कितनी वास्तविकता है, जन साधारण से छिपी नहीं है।

मिथ्यात्व अर्थात् गलत सोच और मान्यताएं सभी समस्याओं का मूल कारण होती है। आधुनिक चिकित्सकों के इसी अवैज्ञानिक सोच के कारण कभी **Mat Cow** रोग के कारण लाखों निरपराध, गायों का कत्ल करवाया जाता है तो **Bird Flu** रोग की आशंका के कारण चंद वर्षों पूर्व महाराष्ट्र और पश्चिमी बंगाल में लाखों बेजुबान, बेकसूर मुर्गियों की हत्या करवायी जाती है। प्रकृति के न्याय में देर भले ही हो, अन्धेर नहीं है। नित्य नये रोगों की नामावली जो आधुनिक चिकित्सक बता रहे हैं, वे सब उसी का दुष्परिणाम होते हैं। चिकनगुनिया, एन्थ्रेक्स, स्वायन फ्लू आदि रोग उनके ज्वलन्त प्रमाण हैं।

2. संसार की सारी गतिविधियां एक दूसरे के सहयोग एवं नियंत्रण से संचालित होती है। जैसे दिन-रात, अन्धेरा-प्रकाश, ऊपर-नीचे, आगे-पीछे, पति-पत्नि, ठण्डा-गरम, पोजेटिव-नेगेटिव, चुम्बक के उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव। जिस प्रकार गाड़ी की गति ब्रेक द्वारा नियंत्रित होती है, बिना अच्छे ब्रेक वाहन का उपयोग नहीं किया जा सकता, ठीक उसी प्रकार शरीर में किसी भी अंग की कार्यप्रणाली पूर्णतया स्वतंत्र नहीं होती। प्रत्येक अंग का पूरक अथवा सहयोगी अंग अवश्य होता है और जब उन सहयोगी अंगों में असंतुलन हो जाता है तो रोग की स्थिति बनती है। परन्तु आधुनिक अंग्रेजी चिकित्सा में यिन-यांग का यह सिद्धान्त गौण है।

फलतः जो अंग रोगग्रस्त होता है उसी में उसका कारण ढूँढा जाता है तथा उसी अंग के उपचार को प्राथमिकता दी जाती है। जो सदैव सही नहीं होता।

3. दुनिया में जब दो व्यक्ति एक जैसे नहीं हो सकते, तब दो रोगियों और उनका निदान एक जैसा कैसे हो सकता है? वास्तव में आज लक्षणों के आधार पर जिन रोगों का नाम:करण किया जाता है, वे अनेक रोगों के समूह के नेता की भाँति होते हैं। जिन्हें सैकड़ों अप्रत्यक्ष रोगों का सहयोग प्राप्त होता है। जनतंत्र में नेता को हटाने का सरलतम उपाय है कि उसके सहयोगियों को उनसे अलग करना। सहयोगियों को अलग किये बिना नेता को हटाना सरल नहीं होता। ठीक उसी प्रकार निदान करते समय, यदि अप्रत्यक्ष रोगों की उपेक्षा करें तो, निदान और उस पर आधारित उपचार आंशिक अथवा अधूरा ही होता है।
4. किसी व्यक्ति को निद्रा में खराटे आते हैं तो किसी को डकारें, किसी को हिचकियाँ, किसी को छीकें, किसी को जम्भाईयाँ (उबासी) आदि अधिक आती हैं। शरीर में इन ध्वनियों के स्पन्दन स्वास्थ्य से संबंधित होते हैं। परन्तु निदान करते समय प्रायः उनकी समीक्षा न होने से निदान व उपचार अधूरा होता है।
5. किसी को लाल तो किसी को हरा, पीला, नीला, सफेद आदि रंग अच्छे या बुरे क्यों लगते हैं? क्या रंगों की पसंद या नापसन्द का स्वास्थ्य से कोई संबंध होता है? क्या रोग का निदान करते समय इस तथ्य की समीक्षा होती है?
6. किसी को खट्टा तो किसी को मीठा, नमकीन, चटपटा आदि में से कोई भी स्वाद रूचिकर अथवा अरूचिकर लगता है। क्या इन स्वादों की पसन्द या अरूचि का स्वास्थ्य से कोई संबंध होता है? मधुमेह वालों को मिठाई और रक्तचाप के रोगियों को नमक छोड़ने की क्यों सलाह दी जाती है? शरीर में इन स्वादों का नियन्त्रण कौन करता है? क्या अपनी इच्छानुसार जब चाहे स्वादों के प्रति लगाव बदला जा सकता है? क्या स्वादों का रोग से संबंध होता है तथा निदान करते समय इस तथ्य को ध्यान में रखा जाता है?
7. चंद व्यक्ति अत्यधिक सुगन्ध प्रिय होते हैं। चन्द तनिक भी दुर्गन्ध सहन नहीं कर सकते। कुछ व्यक्तियों को दूर में कुछ भी जल रहा हो, सहज आभास हो जाता है तो कुछ को समीप में जलने का भी आभास नहीं होता। क्या शरीर से निकलने वाली तथा बाहिर से आने वाली गन्धों के प्रति रूचि अथवा अरूचि के भाव का स्वास्थ्य से कोई संबंध होता है? क्या गन्ध के प्रति हमारी प्रकृति को दवा द्वारा मन चाहा बदलना संभव है? क्या गंध के प्रति रूचि या अरूचि निदान को प्रभावित करती है?
8. किसी व्यक्ति को बैठे-बैठे ही पसीना आता है तो अन्य को कठिन परिश्रम अथवा दौड़ने के बावजूद भी नहीं आता। ऐसा क्यों? किसी को आंखों में बिना कारण आंसू आ जाते हैं। किसी के थूक, कफ अथवा पसीना ज्यादा, तो वैसे ही अन्य लक्षणों वाले अन्य रोगी को कभी-कभी कम भी आता है? क्या हम जैसा चाहें, जितना चाहें, जिस मार्ग से चाहें तरल विजातीय पदार्थों का विसर्जन अपनी इच्छानुसार कर सकते हैं? क्या विजातीय तरल विभिन्न द्रवों के विसर्जन तरीकों का आपसी संबंध होता है? क्या पेटालोजीकल अथवा अन्य परीक्षणों द्वारा इनके कारणों का पूर्ण निदान संभव होता है?
9. कोई व्यक्ति दयालु तो कोई क्रूर हिंसक क्यों? कोई निराश, बेचैन अधीर तो कोई धैर्यवान क्यों? कोई लोभी, लालची तो कोई संतोषी क्यों? कोई क्रोधी, चिड़चिड़ा तो दूसरा शान्त और मधुर वक्ता क्यों? कोई मायावी, कपटी, दगोबाज तो दूसरा सहज, सरल क्यों? कोई घमण्डी तो कोई विनम्र क्यों? कोई भयभीत, तनावग्रस्त,

दुःखी तो कोई निर्भय, तनावमुक्त और सुखी क्यों? क्या ये संस्कार स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं? क्या आधुनिक चिकित्सा पद्धतियां निदान में इन तथ्यों को महत्व देती हैं? क्या ब्राह्म लक्षणों के साथ इनका कोई संबंध है? क्या समान लक्षणों वालों का स्वभाव एक जैसा होना जरूरी है?

रोग के ऐसे अनेक मूल कारणों की उपेक्षा होने से तथा मात्र बाह्य प्रकट होने वाले समान लक्षणों के आधार पर होने वाले निदान एवं उपचार का लक्ष्य रोगी को राहत दिलाने तक ही सीमित होता है। दवाईयों का दुष्प्रभाव भी पड़ता है। रोग के कारण बने रहते हैं। आधुनिक चिकित्सा पद्धति का प्रायः जीवन पद्धति से संबंध नहीं होता। आधुनिक चिकित्सक प्रायः रोग की चिकित्सा करते हैं, रोग न होने की नहीं। उस तरफ उनका ध्यान ही नहीं जाता। आधुनिक चिकित्सा पद्धति में निदान को प्रभावित करने वाले उपरोक्त एवं ऐसे अनेक तथ्य उपेक्षित होते हैं, फलतः निदान समग्र दृष्टिकोण से नहीं होता। जब तक रोग का कारण मौजूद रहता है, तब तक उपचार स्थायी और प्रभावशाली नहीं हो सकता।

क्या अंग्रेजी चिकित्सा ही प्रभावशाली है?

प्रायः ऐसा प्रचारित किया जाता है कि आधुनिक समझी जाने वाली ऐलोपैथी चिकित्सा पद्धति ही वैज्ञानिक, मौलिक एवं अत्यधिक प्रभावशाली होती है तथा अन्य चिकित्सा पद्धतियां अवैज्ञानिक, अमौलिक या वैकल्पिक हैं। क्या ऐसा कथन सत्य पर आधारित है? अगर एलोपैथिक चिकित्सा प्रभावशाली होती तो दवा लेते ही उपचार हो जाता। रोगियों को लम्बे समय तक अस्पतालों और डॉक्टरों के चक्कर नहीं काटने पड़ते। रोगियों की संख्या में दिनों दिन तीव्र गति से वृद्धि नहीं होती। बहुत से रोगों में जिन्दगी भर दवायें खाने की आवश्यकता नहीं होती। उपचार के दुष्प्रभाव नहीं पड़ते। कैंसर, एड्स, एन्थ्रेक्स, चिकनगुनिया, डेंगू, स्वाइन फ्लू जैसे नवीन रोगों का जन्म नहीं होता।

क्या उपचार में राहत ही पूर्ण चिकित्सा हो सकती है?

आधुनिक चिकित्सा पद्धति का उद्देश्य एवं प्राथमिकताएं तात्कालिक परिणामों पर आधारित होने से प्रायः उपचार राहत तक ही सीमित होता है। उपचार के कारण भविष्य में पड़ने वाले दवाओं के दुष्प्रभावों की उपेक्षा होती है। संक्रामक और असाध्य रोगों में दवा जीवन पर्यन्त आवश्यक बन जाती है। क्या राहत को ही पूर्ण उपचार मानने वाली चिकित्सा पद्धति स्वयं को वैज्ञानिक तथा अन्य प्रभावशाली चिकित्सा पद्धतियों को वैकल्पिक कहने का दावा कर सकती है?

अच्छे चिकित्सक के गुणः- किसी भी चिकित्सा पद्धति के अच्छे चिकित्सक में निम्न गुण होने चाहिए।

1. विषय का अच्छा ज्ञान एवं उपचार तथा परामर्श का अनुभव।
2. मधुर वाणी एवं रोगी में आत्म विश्वास बढ़ाने वाला।
3. रोगी की निदान एवं उपचार संबंधी शंकाओं की उपेक्षा न करने वाला।
4. जो क्रोधी, चिड़चिड़ा स्वभाव वाला और घमण्डी न हो।
5. पूर्वाग्रसित मान्यताओं वाला न हो। सत्य को समझकर स्वीकारने वाला हो।
6. जो रोगी को अपनी प्रयोगशाला न बनाये। यदि रोग समझ में न आये तो अन्य चिकित्सकों से परामर्श करने में न हिचकिचाता हो।
7. जो रोगी को अनावश्यक परीक्षण कराने का परामर्श न दें।

8. रोगी को तुरन्त राहत दिलाने हेतु भविष्य में अधिक नुकसान पहुंचाने वाली अनावश्यक दवायें लेने हेतु परामर्श न दें।
9. विभिन्न प्रभावशाली चिकित्सा पद्धतियों की निम्नतम सैद्धान्तिक जानकारी रखता हो।
10. जो उपचार में रोगी की क्षमताओं का अधिकतम उपयोग लेता हो।
11. जो यथा संभव हिंसा से निर्मित दवाओं का परामर्श नहीं देता हो।
12. जो शारीरिक रोगों से मुक्त करने के साथ-साथ उपचार में रोगी का मानसिक एवं आत्मिक विकार भी घटाने वाला हो।
13. जो रोगी का समग्र दृष्टिकोण से, पूर्ण शरीर को एक ईकाई मानकर परीक्षण करता हो एवं बाह्य असंतुलन दूर करता हो।
14. जिस श्रद्धा के साथ रोगी डॉक्टर के पास आत्म समर्पण करता है, उसके साथ विश्वासघात न करता हो।
15. जो सहयोगी अप्रत्यक्ष रोगों की उपेक्षा न करता हो।

प्रत्येक चिकित्सक को अपनी योग्यता का आंकलन उपरोक्त मापदंडों के आधार पर करना चाहिए, क्योंकि वे ही स्वयं के सच्चे समीक्षक, निरीक्षक और परीक्षक हो सकते हैं। रोगी तो डॉक्टर को भगवान का स्वरूप मानता है। अच्छे चिकित्सक का लक्ष्य रोगी का हृदय जीत रोगी को रोग मुक्त बनाने का प्राथमिक तथा अर्थोपार्जन का बाद वाला होना चाहिए।

स्वास्थ्य के प्रति सच्चा दृष्टिकोण क्या है ?

अतः जब तक चिकित्सक का दृष्टिकोण शरीर को स्वस्थ करने के साथ मन और आत्मा को स्वस्थ बनाने का नहीं होगा, उपचार अधूरा होगा। जो स्वयं अपूर्ण है वह पूर्णता की बात करने का दावा कैसे कर सकता है ? उससे विरोधाभास होगा। जहां विरोधाभास होगा वहां नुकसान की संभावना रहेगी। हमें हमारा विवेक जाग्रत रखना है। हानि-लाभ, उपयोगी-अनुपयोगी, करणीय-अकरणीय की प्राथमिकताओं के आधार पर चिंतन कर स्वयं का आचरण करना होगा। विकार रोग है। अतः जो उपचार शरीर, मन, वाणी एवं आत्मा के विकारों को जितना जल्दी एवं स्थायी रूप से दूर करने में सक्षम होगा, वहीं चिकित्सा पद्धति सर्वश्रेष्ठ एवं वैज्ञानिक कहलाने का दावा कर सकती हैं। स्वास्थ्य के प्रति यही सच्चा और वैज्ञानिक दृष्टिकोण होता है।

अच्छी चिकित्सा पद्धति कौनसी:-

अच्छी चिकित्सा पद्धति के लिए आवश्यक होता है, रोग के मूल कारणों का प्रारम्भिक अवस्था में ही सही निदान, तुरन्त दुष्प्रभावों से रहित प्रभावशाली स्थायी उपचार। जो पद्धति सहज, सरल, सस्ती, स्वावलंबी एवं अहिंसक होने के साथ-साथ शरीर, मन, वाणी, भाव और आत्मा के विकारों को कम करने में सक्षम हो। जिन चिकित्सा पद्धतियों में करणीय-अकरणीय, भक्ष्य-अभक्ष्य, अहिंसा-हिंसा, न्याय-अन्याय, वर्जित-अवर्जित का विवेक हों, वे ही चिकित्सा पद्धतियां अपने आपको वैज्ञानिक एवं सर्वश्रेष्ठ होने का दावा कर सकती हैं ?

वैकल्पिक चिकित्सा कौनसी ?

स्वावलम्बी या परावलम्बी। सहज अथवा दुर्लभ। सरल अथवा कठिन, सस्ती अथवा महंगी। प्रकृति के सनातन सिद्धान्तों पर आधारित प्राकृतिक या नित्य बदलते मापदण्डों वाली अप्राकृतिक। अहिंसक अथवा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हिंसा, निर्दयता, क्रूरता को बढ़ावा देने वाली। दुष्प्रभावों से रहित अथवा दुष्प्रभावों वाली। शरीर की

प्रतिकारात्मक क्षमता बढ़ाने वाली या कम करने वाली। रोग का स्थायी उपचार करने वाली अथवा राहत पहुंचाने वाली। सारे शरीर को एक इकाई मानकर उपचार करने वाली अथवा शरीर का टुकड़ों-टुकड़ों के सिद्धान्त पर उपचार करने वाली।

उपर्युक्त मापदण्डों के आधार पर हम स्वयं निर्णय करें कि कौनसी चिकित्सा मौलिक हैं और कौनसी वैकल्पिक? मौलिकता का मापदण्ड भ्रामक विज्ञापन अथवा संख्याबल नहीं होता। अतः हमें स्वीकारना होगा कि स्वावलम्बी चिकित्सा पद्धतियाँ भी मौलिक चिकित्सा पद्धतियाँ हैं, वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियाँ नहीं हैं?

किसी बात को बिना सोचे समझे स्वीकार करना यदि मूर्खता है तो अनुभूत सत्य को बिना सम्यक् चिन्तन एवं तर्क की कसौटी पर कसे, प्रचार-प्रसार के अभाव में पूर्वग्रसित गलत धारणाओं के कारण अस्वीकार करने वालों को कैसे बुद्धिमान कहा जा सकता है?

स्वास्थ्य मंत्रालय स्वास्थ्य के प्रति कितना सजग?

स्वास्थ्य मंत्रालय का कर्तव्य

स्वास्थ्य मंत्रालय का दायित्व है कि जनता के स्वास्थ्य की देखभाल करें। रोग के कारणों से प्रजा को सजग एवं सतर्क करें। रोगियों के लिये प्रभावशाली, सस्ती, स्वावलम्बी, दुष्प्रभावों से रहित चिकित्सा व्यवस्था उपलब्ध करावें तथा अन्य मंत्रालयों से समन्वय रख, स्वास्थ्य के लिये हानिकारक खाद्य में मिलावट एवं कीटनाशक पर आधारित कृषि उपज, शारीरिक अथवा मानसिक प्रदुषण फैलाने वाली गतिविधियों, योजनाओं तथा प्रचार माध्यमों पर अंकुश लगायें। स्वास्थ्य संबंधी प्रभावशाली एवं उपयोगी विश्व के किसी भी क्षेत्र में प्रचलित चिकित्सा पद्धति ध्यान में आते ही उसकी विशेष, जानकारी प्राप्त करने की पहल करें। स्वास्थ्य के लिये हानिकारक, मांसाहार, शराब, एवं अन्य दुर्व्यसनों पर प्रतिबंध लगाकर तथा मनोरंजन के नाम पर हिंसा दर्शाने वाले दृश्यों, विज्ञापनों आदि को प्रचारित करने पर अंकुश लगाकर, जनता को रोग मुक्त रख, अपने दायित्व का निर्वाह करें।

स्वास्थ्य मंत्रालय का दृष्टिकोण:-

जब किसी भी चिकित्सा पद्धति को सरकारी मान्यता देने का प्रश्न उठाया जाता है तो उन्हें तो उन्हें हमारा स्वास्थ्य मंत्रालय बिना सोचे समझे, बिना अध्ययन एवं शोध किये, अवैधानिक बतलाकर नकार देता है। स्वास्थ्य मंत्रालय के प्रभारी अधिकारी न तो उसमें कार्यरत विशेषज्ञों से विचार विमर्श करना आवश्यक समझते हैं और न उन विषयों पर प्रकाशित शोध पूर्ण साहित्य की खोज कर अध्ययन करने में रुचि रखते हैं।

आज हमारा स्वास्थ्य मंत्रालय अपने कर्तव्यों, दायित्वों से पूर्ण रूप से अनभिज्ञ प्रतीत हो रहा है। सारे स्वास्थ्य मंत्रालय पर अंग्रेजी चिकित्सा पद्धति से संबंधित विशेषज्ञों, दवा निर्माताओं, समर्थकों, प्रशंसकों का एक छत्र आधिपत्य है। परिणाम स्वरूप चिकित्सा हेतु भारत में अंग्रेजी चिकित्सा पद्धति को ही लगभग पूर्ण रूपेण सर्वे सर्वा माना जा रहा है। उनके प्रचार प्रसार एवं शोध हेतु नये-नये महाविद्यालय खोले जा रहे हैं। शोध हेतु अनुदान दिये जा रहे हैं। स्वास्थ्य मंत्रालय के बजट का अधिकांश प्रतिशत उन्हीं पर खर्च किया जा रहा है। स्वास्थ्य मंत्रालय का पक्षपातपूर्ण दृष्टिकोण, संकुचित मान्यतायें, अंग्रेजी दवाईयों से पड़ने वाले दुष्प्रभावों को छिपाने की प्रवृत्ति एवं सिर्फ फायदे के एक पक्षीय मिथ्या आंकड़ों को प्रचारित करने से राष्ट्र की भोली-भाली जनता भ्रमित हो, अपने

स्वास्थ्य के साथ खिलवाड़ कर रही है। फलतः स्वास्थ्य संबंधी समस्यायें अनियंत्रित करने में स्वास्थ्य मंत्रालय की नीतियां आग में घी का काम कर रही हैं।

ऐसी परिस्थितियों में राष्ट्र के लिये अधिक उपयोगी, सरल, सुलभ, सस्ती, अहिंसक, स्वावलम्बी, प्रभावशाली, बिना दवा उपचार की विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों को जो सबके लिये, सब समय, सब जगह उपलब्ध हो, अपने प्रचार-प्रसार एवं शोध हेतु सरकारी सहयोग कैसे मिले? जन-जन तक उनकी जानकारी कैसे पहुंचायें? स्वास्थ्य में रुचि रखने वाले प्रत्येक नागरिक के चिन्तन का विषय हैं?

अवैज्ञानिक पद्धतियों पर प्रतिबंध क्यों नहीं?

यदि किसी अवैज्ञानिक पद्धति द्वारा राष्ट्र में सार्वजनिक रूप से उपचार किया जा रहा हो, स्वयं सेवी संस्थायें अथवा व्यक्तिगत स्तर पर ऐसी पद्धतियों का प्रचार-प्रसार हो रहा हो, तो उन पर प्रतिबंध क्यों नहीं लगाया जाता? उन पर अंकुश लगाने का दायित्व किनका? वैज्ञानिकता का आधार क्या? जिन अधिकारियों को अन्य चिकित्सा पद्धतियों के बारे में न तो सामान्य जानकारी ही हो, न जानने, समझने एवं विचार विमर्श हेतु जिज्ञासा भी, ऐसे व्यक्तियों से उस विषय पर उचित प्रतिक्रिया कैसे प्राप्त हो सकती है? ऐसे अधिकारियों की उन चिकित्सा पद्धतियों पर सलाह कैसे न्याय संगत हो सकती है? पूर्वाग्रह, अज्ञान, अविवेक, अरूचि, दवा निर्माताओं के भ्रामक विज्ञापन एवं दबाव के कारण अन्य चिकित्सा पद्धतियों के प्रति उपेक्षावृत्ति उनके संकुचित दृष्टिकोण को प्रदर्शित करती है। यदि ऐसा मान लिया जाये कि उनको जन साधारण के स्वास्थ्य से कोई लेना-देना नहीं है। मात्र अंग्रेजी चिकित्साओं एवं दवा निर्माताओं के स्वार्थी तथा हितों की रक्षा करना ही हमारे स्वास्थ्य मंत्रालय का एक मात्र उद्देश्य समझ लिया जाये तो भी अतिशयोक्ति नहीं होगी? भारतीय योग एवं अन्य पौराणिक चिकित्सा पद्धतियों की विश्वभर में क्यों अनुकूल प्रतिक्रिया हो रही है? महाप्रज्ञ जी, बाबा रामदेव जी, रविशंकर जी, महेश योगी जी आदि दुनियां भर में क्यों सम्मानित हो रहे हैं? हमारी पौराणिक चिकित्सा पद्धतियों के प्रति सारा विश्व क्यों आकर्षित हो रहा है?

टीकाकरण अभियान कितना उचित?

स्वतंत्र भारत में आज भी हम अपने स्वास्थ्य के प्रति कितने पराधीन होते जा रहे हैं? हमारा चिन्तन एवं विवेक सुसुप्त हो रहा है? जबरदस्ती टीकाकरण अभियान के पीछे हमारा सोच कितना सही है शोध का विषय है? जिन बच्चों में पोलियों अथवा अन्य किसी रोग के प्रारम्भिक लक्षण भी न हों, बिना निदान किये अन्धाःनुकरण कर टीके लगाना, पोलियों की दवा पिलाना कितना अदूरदर्शिता का द्योतक है? इस संबंध में जो तथ्य सामने आ रहे हैं उनकी उपेक्षा कर अनायास भावी पीढ़ी को रोगग्रस्त, अशक्त, कमजोर, डरपोक, बनाने का क्यों षडयंत्र किया जा रहा है? जहां साधन, साध्य एवं सामग्री तीनों की पवित्रता संदिग्ध हों, ऐसे तरीकों से शरीर को लम्बे समय तक कैसे स्वस्थ रखा जा सकता है?

दवायें शरीर की प्रतिकारात्मक शक्ति घटाती हैं:-

आज उपचार भी एक फैशन का रूप लेता जा रहा है और उसका कारण है भविष्य में दवाओं के दुष्प्रभावों से होने वाले दुष्परिणामों के प्रति अज्ञान। डॉक्टरों के झूठे आश्वासन, लुभावने विज्ञापन, रोगी में धैर्य, सहनशक्ति, स्वचिंतन एवं कर्म सिद्धान्त की जानकारी का अभाव। साधारण से रोग में बड़े से बड़े डॉक्टर के पास जाकर निदान एवं परीक्षण करना हम अपनी आन, बान व शान समझते हैं। हमारा अपने शरीर की क्षमताओं पर विश्वास घटता जा

रहा है। शरीर में इतनी क्षमता है कि वह छोटी-मोटी व्याधियों को स्वयं दूर कर लेता है। पर धैर्य व सहनशीलता नहीं रख पाते। यही कारण है कि रोग होते ही हम अपने स्वजनों और मित्रों को अस्पताल ले जाना अपना कर्तव्य समझते हैं। हम निदान एवं उपचार की सत्यता गौण कर चिकित्सकों पर अंधश्रद्धा करते हैं। जो ऐसा नहीं करते हैं, उन्हें हम मूर्ख, कंजूस तथा यहां तक कह देते हैं कि यह जान बूझकर अपने परिजन को मारना चाहता है।

क्या हम कभी इस बात का चिंतन करते हैं कि जो गरीब हैं, दवा कम लेते हैं, डॉक्टरों के चक्कर, कम लगाते हैं, उनके शरीर में प्रतिरोधक क्षमता, बराबर पौष्टिक आहार न लेने के बावजूद भी अपेक्षाकृत ज्यादा क्यों होती है? हम यह भूल जाते हैं कि अंग्रेजी दवाइयां हमारे शरीर की प्रतिरोधक क्षमता घटाती है। उनका दुष्प्रभाव होता है। अतः हम जितने ज्यादा अस्पताल के चक्कर काटेंगे, दवाईयों का सेवन करेंगे, उतने ही दवाईयों के पराधीन बन जायेंगे।

क्या थोथे नारों से स्वास्थ्य मिल सकता है ?

आज डॉक्टरों एवं अस्पतालों की संख्या निरन्तर बढ़ने के बावजूद रोगियों की संख्या में बढ़ोतरी क्यों हो रही है? चिकनगुनिया, एड्स, डेंगू, एन्थेक्स, पोलियो, कैंसर, स्वाइन फ्लू जैसे नये-नये रोग क्यों पनप रहे हैं? जो कारण जनता को बतलाये जा रहे हैं, उनमें कितनी यथार्थता है। राष्ट्र के स्वास्थ्य की सुरक्षा करने वालों को स्वीकार करना होगा कि थोथे नारों से जनता को स्वास्थ्य नहीं दिलाया जा सकता।

स्वास्थ्य मंत्रालय से अपेक्षाएं:-

स्वास्थ्य मंत्रालय को आधुनिक चिकित्सा पद्धति का अन्धा:नुकरण करने से पूर्व स्वस्थ कौन? अच्छा स्वास्थ्य कैसा? रोगी कौन? रोग क्यों? आदि स्वास्थ्य से जुड़े मूल तथ्यों को परिभाषित करना चाहिये। भारत की जनता को रोग मुक्त करने हेतु उनके पास तत्कालीन और दीर्घकालीन क्या योजनाएं हैं? स्वास्थ्य के नाम पर अरबों रुपयों को खर्चकर अति आधुनिक अस्पतालों के निर्माण एवं चिकित्सकों की संख्या बढ़ने के बावजूद रोग और रोगियों की संख्या में क्यों वृद्धि हो रही है? कैंसर, एड्स, एन्थेक्स, चिकनगुनिया, स्वाइन फ्लू जैसे रोग क्यों पनप रहे हैं? क्या कहीं मूल में तो भूल नहीं हो रही है? जिस चिकित्सा पद्धति के दुष्प्रभावों से सारी समस्यायें हो रही हैं, क्या उन्हीं से उसका समाधान प्राप्त करने की भूल तो नहीं हो रही है? निम्न बिन्दुओं पर स्वास्थ्य मंत्रालय को सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाना चाहिये ताकि भारत की जनता भविष्य में रोग मुक्त जीवन जी सके।

1. क्या राहत को ही सम्पूर्ण उपचार मानना उचित है?
2. क्या अच्छी प्रतिरोधक क्षमता वालों को वायरस व कीटाणु रोगी बना सकते हैं?
3. क्या टीकाकरण अथवा आधुनिक दवा के सेवन से रोग प्रतिरोधक क्षमता घटती है?
4. क्या उपचार में दुष्प्रभावों की उपेक्षा उचित है?
5. क्या मन एवं भावों की उपेक्षा करने वाला निदान पूर्ण रूप से सही होता है?
6. क्या दो रोगी सम्पूर्ण रूप से एक जैसे हो सकते हैं?
7. क्या बाजार में उपलब्ध दवाओं, इंजेक्शनों का परीक्षण समान परिस्थितियों में होता है?
8. क्या सम्यक् पुरुषार्थ करने के बावजूद कर्म, नियति, काल और स्वभाव स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं?
9. क्या उपचार हेतु अनावश्यक हिंसा, निर्दयता, क्रूरता उचित हैं?

10. क्या मांसाहार स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है? अगर हां तो सरकार उसके प्रचार पर प्रतिबंध क्यों नहीं लगाती।
11. क्या रात्रि भोजन स्वास्थ्यवर्धक होता है?
12. क्या भोजन के पोषिक तत्व भावना से प्रभावित होते हैं?
13. क्या चिकित्सक द्वारा रोगी की उपचार एवं निदान संबंधी सम्यक् जिज्ञासाओं की उपेक्षा करना उचित है?
14. क्या रोगी को चिकित्सक द्वारा किये गये गलत उपचार हेतु क्षतिपूर्ति का मंत्रालय द्वारा कानूनी प्रावधान है?
15. मौलिक चिकित्सा और वैकल्पिक चिकित्सा कौनसी? स्वावलंबी या परावलंबी?

आज स्वावलंबी चिकित्सा पद्धतियों के बारे में थोड़ा बहुत जो भी प्रयास हो रहा है उसमें व्यक्तिगत अथवा स्वयं सेवी संगठनों का योगदान ही प्रायः होता है। स्वास्थ्य मंत्रालय के पास भारतीय परम्पराओं एवं यहां के वातावरण के अनुरूप स्वास्थ्य संबंधी कोई तर्क संगत नीति अथवा योजना नहीं है, जिससे ऐसा विश्वास किया जा सके कि भविष्य में भारत की जनता रोग मुक्त जीवन जी सकेगी।

अध्यात्म की उपेक्षा करने वाला स्वास्थ्य विज्ञान अपूर्ण

आज भौतिक विज्ञान के चमत्कारों से प्रभावित अधिकांश व्यक्ति वैज्ञानिक तथ्यों को ही सुनना, मानना, समझना और ग्रहण करना पसंद करते हैं, भले ही वे विज्ञान के मौलिक सिद्धान्तों से अपरिचित ही क्यों न हों। इसी कारण आज सनातन सिद्धान्तों की उपेक्षा विज्ञान के नाम पर हो रही है। आधुनिक स्वास्थ्य विज्ञान भी आज भ्रामक विज्ञापनों एवं मायावी आंकड़ों से प्रभावित हो रहा है।

विज्ञान क्या है?

विज्ञान का मतलब है विशिष्ट ज्ञान, जो क्रमबद्ध एवं सूत्रबद्ध ढंग से प्राप्त किया जायें अथवा विज्ञान ज्ञान प्राप्त करने की वह विधि है, जिसमें तार्किक विधियाँ एवं प्रयोगों अथवा चेतना की अनुभूतियों के आधार पर सत्य के निष्कर्ष पर पहुँचा जाता है।

किसी भी वस्तु के सूक्ष्मावलोकन व विश्लेषण से प्राप्त यथार्थ ज्ञान को विज्ञान कहते हैं। वैज्ञानिक दृष्टिकोण का मतलब ऐसी क्षमता से कार्य करना होता है, जिसमें कम से कम निवेश में लाभ अधिक से अधिक हो तथा हानि और दुष्प्रभाव भी कम से कम हो। सत्य की खोज का नाम विज्ञान है अर्थात् विज्ञान का मतलब पूर्ण ज्ञान, सम्यक् ज्ञान होता है। विज्ञान सत्य को स्वीकारता है और झूठ को नकारता है। उसका एकमात्र आग्रह पूर्ण सत्य पर होता है। जैसे-जैसे आंशिक अथवा अधूरे सत्य की पोल खुलने लगती है, वर्तमान की वैज्ञानिक मान्यता को भविष्य में अवैज्ञानिक करार दे दिया जाता है अर्थात् जो सत्य को परिभाषित करता है, वही विज्ञान होता है। विज्ञान का आधार होता है सच्चा जो मेरा न कि मेरा जो सच्चा। वास्तव में जो सत्य है उसको स्वीकारने में किसको आपत्ति हो सकती है। परेशानी तो तब होती है जब विज्ञान के नाम पर आंशिक तथ्यों पर आधारित अधूरे सत्य को पूर्ण बतलाने हेतु मायावी आंकड़े, झूठे, भ्रामक विज्ञापनों एवं संख्या बल का सहयोग लिया जाता है तथा वास्तविकता एवं सनातन सत्य को नकारा जाता है। अपनी पद्धतियों को वैज्ञानिक तथा अन्य पद्धतियों को अवैज्ञानिक बतलाने का दुष्प्रचार किया जाता है। हमारा दृष्टिकोण संकुचित हो जाता है। विज्ञान के मूल मापदण्ड गौण होने लगते हैं। किसी भी तथ्य को वैज्ञानिक मानने के लिये अंतिम परिणामों की एकरूपता भी आवश्यक होती है, भले ही वह प्रयोग

किसी के द्वारा कहीं पर भी क्यों न किया गया हो? अज्ञान का अर्थ ज्ञान का अभाव नहीं, परन्तु अल्प ज्ञान अथवा मिथ्याज्ञान भी होता है। अज्ञान से अविश्वास और भ्रान्ति पैदा होती है।

प्रायः अधिकांश आधुनिक चिकित्सकों का अपनी खोजों की वैज्ञानिकता सिद्ध करने का दावा लगभग प्रायः ऐसा ही लगता है। विशेषकर स्वास्थ्य के नाम पर आयोजित होने वाले अधिवेशनों में प्रस्तुतिकरण का ऐसा ही आधार होता है। वैज्ञानिक शोध का आधार होना चाहिये अंतिम परिणामों का स्पष्ट प्रकटीकरण। अर्थात् लाभ और हानि का सही विश्लेषण। प्रत्येक चिकित्सक अपनी उपलब्धियों को तो बढ़ा-चढ़ा कर प्रस्तुत करते हैं, प्रचारित करते हैं, परन्तु जहां अपेक्षित परिणाम नहीं मिलते अथवा जो दुष्प्रभाव होते हैं, उनकी उपेक्षा करते हैं, छिपाते हैं, प्रकट नहीं करते हैं तथा उनके कारणों का विश्लेषण तक नहीं करते हैं। स्वास्थ्य विज्ञान की शोध के आधार में एकरूपता होनी चाहिए अर्थात् जिन रोगियों अथवा प्राणियों पर दवाओं अथवा उपचार के जो प्रयोग किये जाते हैं, उसका खान-पान, रहन-सहन, स्वभाव, मानसिकता, आचार-विचार, सोच, चिन्तन-मनन की प्रक्रिया, पारिवारिक समस्याएं तथा शरीर में अप्रत्यक्ष एवं सहयोगी रोगों की एकरूपता भी होनी चाहिए, क्योंकि यही कारण रोग से संबंधित होते हैं। ऐसी परिस्थितियां सभी रोगियों में एक सी होना कभी भी सम्भव नहीं होती। अतः उसके अभाव में प्रस्तुत परिणाम कैसे वैज्ञानिक और सत्य पर आधारित समझे जा सकते हैं, चिन्तन का प्रश्न है?

जीवन में चेतना का महत्त्व:-

सारा शरीर मुख्यता दो प्रकार की ऊर्जाओं से संचालित होता है। प्रथम भौतिक ऊर्जा तथा दूसरी चैतन्य ऊर्जा। किसी एक के पूर्ण अभाव में मानव जीवन चल ही नहीं सकता। भौतिक ऊर्जा शरीर के अंगों, उपांगों, अवयवों, तंत्रों आदि के निर्माण हेतु आवश्यक साधन उपलब्ध करने में सहायक होती है और चैतन्य ऊर्जा उन उपलब्ध साधनों से उनका निर्माण, संचालन और नियंत्रण करती है। चैतन्य ऊर्जा के अभाव में न तो शारीरिक अवयवों आदि का निर्माण ही सम्भव है और न ही जीवन। आधुनिक चिकित्सकों को आज तक नाखून, आंसू एवं पसीने की एक बूंद आदि का निर्माण करने में भी सफलता क्यों नहीं मिली? इसी कारण भौतिक विज्ञान के विकास के बावजूद चैतन्य ऊर्जा के अभाव में अभी तक शरीर के लिये आवश्यक कोशिकाओं, रक्त अस्थियों, मांस पेशियों, नाड़ियों, वीर्य आदि अवयवों तथा आँख, कान, नाक जैसी इन्द्रियों एवं हृदय, फेफड़े, गुर्दे, लीवर जैसे अंगों का निर्माण प्रयोगशालाओं में सम्भव नहीं हो सकता। चैतन्य ऊर्जा का विकास आत्मा की पवित्रता के अनुसार होता है। अतः उपचार करते समय जो चिकित्सा पद्धतियाँ भौतिक और चैतन्य ऊर्जाओं को ठीक रखने, सन्तुलित रखने के सिद्धान्तों पर कार्य करती है, वे ही अपने आपको वैज्ञानिक बतलाने का वास्तव में दावा कर सकती है।

भौतिक विज्ञान की सीमाएँ-

भौतिक विज्ञान का आधार वही पदार्थ होता है, जिसे दिखाया जा सके, जो मांपा जा सके, जो प्रयोगों, परीक्षणों से प्रमाणित किया जा सके। ऐसे परिणाम जो तथ्य, तर्क एवं आंकड़ों से लिपिबद्ध किये जा सकें। जिसका आधार, निरीक्षण, विश्लेषण, निश्चित प्रक्रिया पर आधारित व्यवस्थित आंकड़ों तथा संकलित एवं प्रमाणित हों। जिसका उपयोग, संचालन, नियंत्रण प्रायः व्यक्ति स्वयं अथवा अन्य कोई व्यक्ति द्वारा निश्चित विधि का पालन कर बिना किसी बाह्य भेदभाव कहीं भी किया जा सके। जैसे विज्ञान द्वारा विकसित सभी सुविधाओं के साधन, उपकरण, यंत्र आदि का उपयोग कोई भी कर सकता है। उपर्युक्त मापदण्डों को जो पूर्ण न करते हों, उनको आज का मानव वैज्ञानिक तथ्य के रूप में स्वीकार करते संकोच करता है, भले ही वह अनुभूतियों द्वारा प्रमाणित ही क्यों

न हों? उपर्युक्त मापदण्डों के आधार पर विज्ञान के नाम पर आज तक जो कुछ उपलब्धियाँ विकसित हुई हैं अथवा हो रही हैं, उन सभी का सम्बन्ध प्रायः भौतिक विज्ञान तक ही सीमित होता है। अनुभूति चेतना की ऊर्जा का माप और उनसे अप्रत्यक्ष पड़ने वाले प्रभाव उसमें उपेक्षित होते हैं, क्योंकि सभी अदृश्य, अरूपी पदार्थ उसकी पकड़ में नहीं आते।

जड़ विज्ञान और आध्यात्मिक विज्ञान में भेद:-

भौतिक ज्ञान विज्ञान के लिये आवश्यक है। फिर भी भौतिक ज्ञान तो वही तक हमारा साथ दे सकता है जहाँ तक वह जानता है और सिद्ध कर सकता है। इन्द्रिय ज्ञान से पार अतिन्द्रिय ज्ञान का भी अस्तित्व होता है, जिसे आध्यात्मिक विज्ञान अथवा आत्म ज्ञान कहा जा सकता है। टेप से आवाज ग्रहण कर पुनः सुना जा सकता है। रेडियों, टी.वी., वी.सी.आर., कम्प्यूटर, रोबोट आदि मनुष्य की आज्ञानुसार कार्य करते हैं, परन्तु स्वतः संचालित नहीं होते। आपत्तिकाल में आवश्यक स्वतंत्र निर्णय लेने में सक्षम नहीं होते।

जड़ विज्ञान का कार्य क्षेत्र होता है भौतिक विकास, भौतिक सफलताएं, भौतिक उपलब्धियाँ आदि। उसका आधार होता है परावलम्बन, जबकि आध्यात्मिक विज्ञान से आत्मविकास का मार्ग प्रशस्त होता है। उसका आधार होता है स्वावलम्बन अर्थात् स्वयं के द्वारा स्वयं का निरीक्षण, परीक्षण, नियंत्रण, संचालन। उसका परिणाम होता है आत्मानुभूति। मनोबल और आत्मबल का विकास, अर्थात् भौतिक विज्ञान व्यक्ति को विशिष्ट बनाता है, जबकि आध्यात्मिक ज्ञान मानव को स्वाभाविक बनाता है।

भौतिक विज्ञान प्रयोग में विश्वास करता है, जबकि अध्यात्म विज्ञान योग में। विज्ञान शक्ति की खोज करता है, जबकि अध्यात्म शान्ति की। जिस प्रकार बिजली का तार और उसमें प्रवाहित विद्युत अलग-अलग होती है। उसी प्रकार जड़ से संबंधित शरीर और चेतना से संबंधित आत्मा अलग-अलग होती है। अतः दोनों से संबंधित ज्ञान का लक्ष्य भी अलग-अलग होता है।

आध्यात्मिक साधकों की प्राथमिकता:-

स्वास्थ्य एवं जीवनयापन की दृष्टि से आत्म साधकों का जीवन प्राणी मात्र के प्रति करुणा, दया और अनुकम्पा, सर्व जीव हिताय, सर्व जीव सुखाय की लोकोक्ति को सार्थक करने वाला होता है। उनके शोध और साधना का मूल उद्देश्य आत्मा को निर्मल, शुद्ध, पवित्र बनाना होता है। अर्थात् आत्म पोषण का होता है, भले ही उन्हें कभी-कभी उसके लिए शरीर का कष्ट ही क्यों न सहना पड़े। उनके जीवन में क्रोध, मान, माया, लोभ रूपी कषायों की मन्दता होने से वे अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियों में परेशान नहीं होते। उनमें प्रायः मानसिक आवेग नहीं आते, जो हमारी ग्रन्थियों को प्रभावित कर रोग का मुख्य कारण होते हैं। आचरण में अहिंसा, सत्य, नैतिकता, संयम की प्राथमिकता होती है। प्रायः ऐसे व्यक्ति सहनशील, सहिष्णु, निर्भिक और धैर्यवान होते हैं। वाणी में विवेक और मधुरता का सदैव ख्याल रखते हैं। उनका उद्देश्य होता है जीवन में चिरस्थायी आनन्द, शक्ति एवं स्वाधीनता की प्राप्ति। वे स्वयं के द्वारा स्वयं का आत्मावलोकन, निरीक्षण परीक्षण करते हैं। वे स्वयं के द्वारा स्वयं से अनुशासित होते हैं। उनका जीवन, शान्त, संतोषी, संयमी, सहज, संतुलित एवं सरल होता है। विचारों में अनेकान्तता, भावों में मैत्री, करुणा, प्रमोद तथा मध्यस्थता अर्थात् सहजता, स्वदोष-दृष्टि, सजगता, सहनशीलता, सहिष्णुता, दया, सरलता, सत्य, विवेक, संयम, नैतिकता आदि गुणों का प्रादुर्भाव होता है, जिसके परिणाम स्वरूप व्यक्ति के जीवन में अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियों में समभाव, निस्पृहता, अनासक्ति विकसित होती है। व्यक्ति निर्भय, तनाव

मुक्त बन सकता है। वाणी में सत्य के प्रति निष्ठा, सभी जीवों के प्रति दया, करुणा, मैत्री, परोपकार जैसी भावना और मधुरता प्रतिध्वनित होने लगती है। व्यक्ति का मनोबल और आत्मबल विकसित होने लगता है। व्यक्ति स्वावलम्बी, स्वाधीन बनने लगता है।

अध्यात्म से शून्य स्वास्थ्य विज्ञान अपूर्ण :-

जिस चिकित्सा में शारीरिक स्वास्थ्य ही प्रमुख हो, मन, भावों अथवा आत्मा के विकार जो अधिक खतरनाक, हानिकारक होते हैं, गौण अथवा उपेक्षित होते हैं या बढ़ते हैं, ऐसी चिकित्सा पद्धतियों को ही वैज्ञानिक समझने वाले विज्ञान की बातें भले ही करते हैं, विज्ञान के मूल सिद्धान्तों से अपरिचित लगते हैं। विज्ञान शब्द का अवमूल्यन करते हैं। सनातन सत्य पर आधारित प्राकृतिक सिद्धान्तों को नकारते हैं।

स्वावलम्बी चिकित्सा पद्धतियां क्यों प्रभावशाली?

क्या स्वास्थ्य हेतु समान मापदण्डों का निर्धारण संभव है ?

दुनियां में कोई भी दो व्यक्ति सम्पूर्ण रूप से एक जैसे नहीं हो सकते? उनके जीवन का लक्ष्य, प्राथमिकताएं, खान-पान, रहन-सहन, आचार-विचार, आवास एवं व्यवसाय का वातावरण तथा परिस्थितियां, अतः बाह्य रूप से कुछ लक्षणों में समानता होने के बावजूद किसी एक रोग के नाम से रोगी का परिचय करना कहां तक सही होता है? पांचों ज्ञानेन्द्रियों के विषय जैसे देखना, सुनना, बोलना, गंध लेना, स्पर्श करना, समझना आदि एक जैसी परिस्थितियों का अलग-अलग प्रभाव क्यों पड़ता है? कहने का आशय यह है कि प्रत्येक व्यक्ति स्वास्थ्य के अलग-अलग स्तर पर जीता है।

रोग के निदान हेतु जो भी रोगी से पूछा जाता है और रोगी अभिव्यक्त करता है अथवा जो यंत्रों एवं पेशालोजिकल रिपोर्ट के परीक्षण से प्राप्त होता है वह सत्यांश ही होता है। अतः स्वस्थ रहने हेतु व्यक्ति को निदान और उपचार की यथार्तता के प्रति स्वयं की सजगता और विवेक आवश्यक होता है।

स्वावलम्बी चिकित्सा के मूलभूत सिद्धान्त:-

प्रभावशाली स्वावलम्बी चिकित्सा पद्धतियां व्यक्ति को स्वस्थ रखने एवं रोग का उपचार करते समय निम्न तथ्यों की उपेक्षा नहीं करती।

1. पूर्ण शरीर, मन और आत्मा को एक इकाई मानकर निदान और उपचार करती है, जिससे न केवल शरीर ही रोग मुक्त होता है अपितु मन सजग और आत्मा विकार मुक्त होती है।
2. पूर्ण शरीर का निदान एवं उपचार करने से अप्रत्यक्ष, सहयोगी रोगों की उपेक्षा नहीं होती।
3. शरीर में स्वयं को स्वस्थ रखने की क्षमता होती है। भोजन, पानी, हवा, सूर्य के प्रकाश के सम्यक् उपयोग तथा आवश्यक श्रम एवं विश्राम द्वारा शरीर की क्षमताओं का पूर्ण उपयोग लेती है।
4. उपचार पूर्णतः सहज, सरल, सस्ता, स्थायी, अहिंसक, दुष्प्रभावों से रहित एवं प्रभावशाली होने के साथ-साथ रोगी की सजगता होने से अंधरे में नहीं होता।
5. शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता कम न हो, अपितु उसमें वृद्धि हो, इस हेतु प्राथमिकता और सजगता होने से वायरस और कीटाणु से व्यक्ति प्रभावित नहीं होता।

पशु जगत का उपचार कौन करता है ?

जब से मानव सभ्यता का विकास हुआ, तभी से स्वास्थ्य वैज्ञानिक, चिकित्सक इस प्रयास में व्यस्त हैं कि मानव रोग मुक्त जीवन कैसे जी सके? यथार्थता यह है कि इतनी प्रगति के बावजूद भी आज रोग और रोगियों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि क्यों होती जा रही है ?

दुनियां में चेतनाशील प्राणियों में मानव का प्रतिशत तो एक प्रतिशत से भी कम है, बाकी 99 प्रतिशत जीव अनादिकाल से सहज जीवन जी रहे हैं, जिन्हें किसी भी प्रकार की चिकित्सा पद्धति का न तो कोई ज्ञान होता है और न अनुभवी चिकित्सकों को सान्निध्य ही मिलता है। क्या वे रोगी नहीं होते? वे पुनः कैसे स्वस्थ होते हैं? दूसरी तरफ स्वच्छ वातावरण में रहने वाले, पौष्टिक आहार का सेवन करने वाले, शुद्ध निर्मल मिनरल वाटर पीने वाले भी रोगी हो जाते हैं, आखिर क्यों? इस पर बिना किसी पूर्वाग्रह के स्वतंत्र एवं निष्पक्ष सम्यक् चिन्तन आवश्यक है।

मानव शरीर में अच्छा तालमेल:-

मानव शरीर दुनियां की सर्वश्रेष्ठ मशीन है जो पाँच इंद्रियों और मन जैसी अमूल्य सम्पदाओं से न केवल परिपूर्ण ही होता है अपितु उसके सारे अंग उपांग पूर्ण तालमेल एवं आपसी सहयोग व समन्वय से अपना-अपना कार्य करते हैं। यदि शरीर के किसी भी भाग में कोई तीक्ष्ण कांटा, सुई अथवा पिन चुभ जाये तो उस समय न तो आँख को अच्छे दृश्य देखना अच्छा लगता है और न कानों को मनपसन्द गीत सुनना। यहाँ तक कि दुनियां भर में चक्कर लगाने वाला हमारा चंचल मन क्षणमात्र के लिए अपना ध्यान वहाँ केन्द्रित कर देता है। जिस शरीर में इतना तालमेल और अनुशासन हो, क्या उस शरीर में कोई अकेला नामधारी रोग उत्पन्न हो सकता है ?

शरीर में स्वयं की आवश्यकताओं को पूर्ण करने की क्षमता होती है:-

हमें चिन्तन करना होगा कि जो शरीर अपनी कोशिकाएँ, रक्त, माँस, मज्जा, हड्डियाँ, चर्बी, वीर्य आदि अवयवों का निर्माण स्वयं करता है, जिसे आधुनिक विकसित स्वास्थ्य विज्ञान पूरी कोशिश के बावजूद अभी तक नहीं बना सका, ऐसे स्वचालित, स्वनिर्मित, स्वनियन्त्रित शरीर में स्वयं के रोग को दूर करने की क्षमता न हो, यह कैसे संभव है? अनुभवी चिकित्सक एवं अच्छी से अच्छी दवा शरीर को अपना उपचार स्वयं करने की प्राकृतिक विधि में सहायक मात्र होते हैं। शरीर के सहयोग के बिना सारे उपचार निष्क्रिय हो जाते हैं।

दुष्प्रभावों की उपेक्षा हानिकारक:-

अधिकांश व्यक्ति रोग होने में स्वयं की गलती को स्वीकार नहीं करते। इसी कारण रोग को समझे बिना, निदान के बारे में अपनी शंकाओं का समाधान प्राप्त किये बिना, डॉक्टरों के पास पड़ने वाली भीड़ के अन्धा:नुकरण के कारण, चिकित्सा से भविष्य में पड़ने वाले दुष्प्रभावों की उपेक्षा करते हुए अपने आपको डॉक्टरों की प्रयोगशाला बनाते प्रायः संकोच नहीं करते। वे इस बात का चिन्तन तक नहीं करते कि दवाओं के अधिक अथवा अनावश्यक सेवन से शरीर की रोग प्रतिरोधक शक्ति क्षीण होने लगती है।

चिकित्सा में हिंसा को प्रोत्साहन अनुचित:-

आत्मा को अशुभकर्मों से भारी करने में सबसे ज्यादा कारण हिंसा, क्रूरता, निर्दयता का आचरण होता है। दुनियां में कोई भी जीव मरना नहीं चाहता। भले ही उसे न चाहते हुए भी मरना क्यों न पड़े। जीवों और जीने दो पर आधारित जीवनचर्या ही मानवता का प्रतीक होती है। अपने स्वार्थ के लिए अन्य जीवों को कष्ट पहुँचाना पाश्विकता का लक्षण है। हमें तो पिन अथवा सूई की चुभन भी सहन न हो, परन्तु अज्ञानवश पोष्टिकता एवं स्वाद, शिक्षा,

दवाओं के निर्माण एवं परीक्षण अथवा उपचार आदि के लिए अन्य जीवों के साथ क्रूरता अथवा उनका वध करना या उन्हें परेशान और पीड़ित करना, स्वयं के लिए दुःखों, कष्टों, रोगों को आमंत्रण देना है। उन मूक बेजुबान, असहाय जीवों की बददुआएं, हृदय से निकली चीत्कारें उनको पीड़ित करने में प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग करने वालों को कभी शान्त, सुखी एवं स्वस्थ नहीं रहने देगी। भले ही पूर्व पुण्य के प्रभाव से स्वार्थी मानव को उसका तत्काल दुष्फल न भी मिले।

जब पूज्य पुरुषों का आशीर्वाद हमें शान्ति पहुँचा सकता है तो दुःखी प्राणियों की आहें अपना प्रभाव क्यों नहीं दिखाएँगी, चिन्तन का प्रश्न है? क्या हिंसा द्वारा निर्मित और क्रूरता द्वारा परीक्षण की गई दवाओं द्वारा उपचार करवाने वालों को अशुभ कर्मों का बन्ध नहीं होता है? प्रकृति का दण्ड देने का विधान पूर्ण न्याय पर आधारित होता है। वहाँ देर भले ही हो सकती है, अंधेर नहीं हो सकती।

अतः जहाँ कोई विकल्प न हो और रोग सहनशक्ति के बाहर हो, उसी अवस्था में लाचारीवश ही ऐसा उपचार लेकर प्रायश्चित लेना चाहिए। अतः हिंसा को प्रोत्साहन देकर आत्मा को विकारी बनाने वाली चिकित्सा पद्धतियाँ पूर्ण रूप से प्रभावशाली कदापि नहीं हो सकती ?

स्वावलम्बी चिकित्सा को प्रभावशाली बनाने हेतु रोगी से अपेक्षाएं:-

स्वावलम्बी चिकित्सा पद्धति से उपचार करते समय रोगी को निम्न बातों का विशेष ध्यान रखना आवश्यक होता है।

1. रोग के कारणों को जानने एवं समझने की जिज्ञासा, परामर्श देने वाले चिकित्सक से निदान और उपचार के बारे में शंकाओं का निराकरण करना तथा स्वयं की भूमिका का सम्यक् चिन्तन कर उसके अनुरूप पुरुषार्थ करना।
2. रोगी की स्वस्थ होने की तीव्र उत्कण्ठा, दृढ़ इच्छा शक्ति, सजगता, निश्चय, मनोबल, सम्यक् श्रद्धा, तर्क पूर्ण चिन्तन तथा दुष्प्रभावों के प्रति उपेक्षावृत्ति न होना।
3. शरीर, मन एवं आत्मा की क्षमताओं का सम्यक् चिन्तन एवं प्राथमिकता के अनुसार उपयोग करना अर्थात् प्राण एवं प्राण ऊर्जा के मूल स्रोत पर्याप्तियों का दुरुपयोग न करना।
4. आत्मबल बढ़ाने हेतु नियमित प्रार्थना, स्वाध्याय, ध्यान, कार्यात्सर्ग एवं तप करना। प्राण और पर्याप्तियों के संयम का अभ्यास करना।
5. मन, वचन और काया का यथा संभव संयम रखना।
6. प्राणी मात्र के प्रति दया, करुणा, मैत्री एवं प्रेम का भाव रखना तथा प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से उन पर क्रूरता, अत्याचार, निर्दयता, हिंसा आदि का व्यवहार न तो स्वयं करना और न करने वालों को सहयोग देना।
7. उपचार में नियमितता, निरन्तरता, समयबद्धता, एकाग्रता एवं स्वयं की भागीदारी की उपेक्षा नहीं करना।

रोगी जितना-जितना उपरोक्त नियमों का पालन करेगा, उतना जल्दी ही वह रोग मुक्त हो जायेगा। यदि वह स्वस्थ हैं तो रोग उसको परेशान नहीं करेगा। उपरोक्त सारी बातें व्यक्ति के स्वयं के नियंत्रण में होती हैं।

स्वावलम्बी चिकित्सा क्यों प्रभावशाली ?

स्वावलम्बी अहिंसात्मक चिकित्सा पद्धतियाँ रोग के मूल कारणों को दूर करती हैं। शरीर, मन और आत्मा में तालमेल एवं सन्तुलन स्थापित करती हैं। शरीर की क्षमताओं और उसके अनुरूप आवश्यकताओं में सन्तुलन

रखती है। स्वावलंबी चिकित्सा पद्धतियां व्यक्ति में धैर्य, सहनशीलता, सजगता, विवेक, स्वदोष दृष्टि एवं आत्म विश्वास विकसित करती है।

व्यक्ति रोग तो स्वयं पैदा करता है, परन्तु दवा और डॉक्टर से ठीक करवाना चाहता है। क्या हमारा श्वास अन्य व्यक्ति ले सकता है? क्या हमारा खाया हुआ भोजन दूसरा व्यक्ति पाचन कर सकता है? प्रकृति का सनातन सिद्धान्त है कि जहाँ समस्या होती है उसका समाधान उसी स्थान पर अवश्य होता है। अतः जो रोग शरीर में उत्पन्न होते हैं उनका उपचार शरीर में अवश्य होना चाहिये। शरीर का विवेकपूर्ण एवं सजगता के साथ उपयोग करने की विधि स्वावलम्बी जीवन की आधारशिला होती है। मानव की क्षमता, समझ और विवेक जागृत करना उसका उद्देश्य होता है। स्वावलम्बी चिकित्सा में निदान और उपचार में रोगी की भागीदारी एवं सजगता प्रमुख होती है। अतः रोगी उपचार से पड़ने वाले सूक्ष्मतरंग प्रभावों के प्रति अधिक सजग रहता है, जिससे दुष्प्रभावों की संभावना प्रायः नहीं रहती। ये उपचार बाल-वृद्ध, शिक्षित-अशिक्षित, गरीब-अमीर, शरीर विज्ञान की विस्तृत जानकारी न रखने वाला साधारण व्यक्ति भी आत्म विश्वास से चिकित्सक के परामर्श से स्वयं कर सकता है।

स्वावलम्बी चिकित्सा पद्धतियाँ हिंसा पर नहीं, अहिंसा पर, विषमता पर नहीं समता पर, साधनों पर नहीं साधना पर, परावलम्बन पर नहीं स्वावलम्बन पर, क्षणिक राहत पर नहीं, अपितु अन्तिम प्रभावशाली स्थायी परिणामों पर आधारित होती हैं। रोग के लक्षणों की अपेक्षा रोग के मूल कारणों को दूर करती है। शरीर, मन और आत्मा में संतुलन और तालमेल स्थापित करती है। जो जितना महत्त्वपूर्ण होता है, उसको उसकी क्षमता के अनुरूप महत्त्व एवं प्राथमिकता देती है। स्वस्थ जीवन जीने हेतु जो अनावश्यक, अनुपयोगी प्रवृत्तियाँ हैं उन पर नियंत्रण रखने हेतु सचेत करती है। इस प्रकार आधि, व्याधि और उपाधि के संतुलन से समाधि, शांति और स्वस्थता शीघ्र प्राप्त होती है। अतः स्वावलंबी चिकित्सा पद्धतियाँ अन्य चिकित्सा पद्धतियों से अधिक प्रभावशाली होती है। साधन, साध्य एवं सामग्री तीनों पवित्र होते हैं। उपचार से पूर्व, रोगी उपचार से पड़ने वाले दुष्प्रभावों के प्रति पूर्ण सावधान रहता है और उसका उपचार अंधेरे में न होने से वह गलत एवं हिंसक दवाओं के सेवन से अपने आपको सहज बचा लेता है। अतः जो चिकित्सा पद्धतियाँ जितनी अधिक स्वावलम्बी होती हैं, रोगी की उसमें उतनी ही अधिक सजगता, भागीदारी होने से वे पद्धतियाँ उतनी ही अधिक प्रभावशाली होती हैं।

शरीर स्वयं का चिकित्सक

मनुष्य का शरीर दुनियाँ की सर्वश्रेष्ठ स्वचलित, स्वनियन्त्रित स्व-अनुशासित मशीन होती है। अच्छे स्वचलित यंत्र में खतरा उपस्थित होने पर स्वतः उसको ठीक करने की व्यवस्था होती है। अतः हमारे शरीर में रोगों से बचने की सुरक्षा व्यवस्था तथा रोग होने पर पुनः स्वस्थ बनाने की व्यवस्था तथा रोग होने पर पुनः स्वस्थ बनाने की व्यवस्था न हो, यह कैसे संभव हो सकता है? वास्तव में स्वास्थ्य के लिए हमारे शरीर में, प्रकृति में और आस-पास के वातावरण में समाधान भरे पड़े हैं। परन्तु उस व्यक्ति के लिए जो अपनी असीम क्षमताओं से अपरिचित हों, जिसका चिन्तन सम्यक् न हो, जो उपचार में प्रत्यक्ष-परोक्ष होने वाली हिंसा तथा भविष्य में पड़ने वाले दुष्प्रभावों के प्रति बेखबर एवं भ्रान्त पूर्वाग्रहों से ग्रसित हों। अर्थात् जिसमें स्वविवेक, सही चिंतन न हो, सम्यक् ज्ञान का अभाव हो, उसके लिए वे समाधान सामने होते हुए भी नजर नहीं आते हैं।

चंद प्रभावशाली उपचार

1. शरीर के जो अंग कमजोर हों, जिस स्थान पर सूजन, जलन, खुजली, दर्द अथवा विजातीय तत्वों के जमा हो जाने के कारण रक्त और प्राण ऊर्जा के प्रवाह में अवरोध आ गया हो, उस स्थान पर दाणा मेथी का शरीर पर स्पर्श कराने से संबंधित समस्याओं में तुरन्त राहत मिलने लगती है।
2. लगभग एक चम्मच सूर्यमुखी तेल को दिन में 2-3 बार 15 से 20 मिनट मुंह में अन्दर ही अन्दर घुमाकर थूकने से रक्त विकार से संबंधित सभी प्रकार के रोग चन्द दिनों में ही दूर हो जाते हैं तथा हड्डियां और दांत मजबूत होने लगते हैं। जोड़ों के दर्द ठीक हो जाते हैं।
3. नमस्कार मुद्रा में गोदुआसन में बैठकर दिन में पांच-सात बार दीर्घ स्वर में ओम् अथवा नमस्कार मंत्र के एक-एक पद का कुछ समय तक उच्चारण करने से मेरूदण्ड, मस्तिष्क एवं नाड़ी संस्थान संबंधी रोगों में चन्द दिनों में ही चमत्कारी परिणाम आते हैं।
4. शरीर के प्रत्येक अंग, उपांग की मांसपेशियों को जितना संभव हो आगे-पीछे, दांयें-बांयें, ऊपर-नीचे घुमाने, खींचने, दबाने, सिकोड़ने और फैलाने से संबंधित अंग की मांसपेशियां सजग और सक्रिय हो जाने से, उस भाग में रक्त परिभ्रमण नियमित होने लगता है। आंख, कान, नाक, मुंह, गला और शरीर के मुख्य जोड़ों के अंग व्यायाम से वहां पर प्राण ऊर्जा का प्रवाह बराबर होने लगता है।
5. जब रोग का कारण समझ में न आए अथवा रोग की असहनीय स्थिति हों, चिकित्सक उपलब्ध न हों, ऐसे समय जो स्वर चल रहा है उसको बदली करने के कुछ समय पश्चात ही रोग का प्रभाव कम होने लगता है। भले ही वह हृदयघात का रोग हो अथवा उच्च या निम्न रक्तचाप अथवा मधुमेह ही क्यों न हों।
6. अपान वायु मुद्रा से हृदयघात, हृदय रोग, हृदय की धड़कन, प्राण ऊर्जा की कमी, उच्च रक्तचाप, सिरदर्द, बेचैनी, पेट की गैस, घबराहट दूर होती है। दिल का दौरा पड़ने पर यह मुद्रा इंजेक्शन के समान तुरन्त प्रभाव दिखलाती है। हृदय के रोगियों को सीढ़िया चढ़ते समय यदि श्वास फूलता हो तो, सीढ़िया चढ़ने से पूर्व 10-15 मिनट इस मुद्रा को करने से श्वास लेने में राहत महसूस होती है। तर्जनी को अंगुष्ठ के मूल से स्पर्श कर अंगूठे का अग्रभाग मध्यमा और अनामिका के ऊपरी पौर से स्पर्श करने व कनिष्ठिका को सीधी रखने से यह अपान वायु मुद्रा बनती है।

मानव जीवन की विशेषताएँ

मानव में चेतना का सर्वाधिक विकास होने के कारण एक विशेषता होती है कि वह जानता भी है और समझता भी है कि वह क्या कर रहा है? क्यों कर रहा है? क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए? मानव में ही चिन्तन, मनन की अपूर्व क्षमता, बुद्धि तथा विवेक होता है। जिससे भूत की भूलों का सुधार और भविष्य के सुखद जीवन की कल्पना एवं सम्यक् पुरुषार्थ कर सकता है। अतः मानव से ही अपनी क्षमताओं के अनुरूप सही उद्देश्य एवं लक्ष्य के प्रति आगे बढ़ने की अपेक्षा रखी जा सकती है।

धमन करना भी हानिकारक हो सकता है

आज स्वास्थ्य के संबंध में अधिकांश व्यक्तियों का चिन्तन प्रायः नगण्य, अथवा अविवेकपूर्ण और सही नहीं होता। हमारी अधिकतर गतिविधियाँ देखा-देखी, सुनी-सुनायी, विज्ञापन पर आधारित, भीड़ से प्रभावित होती है। प्रायः उसके साथ सम्यक् चिन्तन न होने से कभी-कभी अच्छी प्रवृत्तियाँ भी हानिकारक हो सकती है। जैसे जिस व्यक्ति का एक पैर लम्बा और दूसरा पैर छोटा होता है, यदि ऐसा व्यक्ति पैरों का संतुलन किये बिना प्रतिदिन घूमने जाता है, तो उसके लिये घूमना लाभ के स्थान पर हानिकारक भी हो सकता है। शरीर के किसी भाग पर अनावश्यक दबाव लगातार पड़ते रहने से वह भाग रोग ग्रस्त हो जाता है। अतः घूमने से पहले शरीर का संतुलन (*Alignment* अथवा *Balance*) आवश्यक होता है।

बिना दवा मधुमेह का प्रभावशाली उपचार संभव है

पाचन के नियमों का पालन करते हुए, सही समय सात्विक, मौसम एवं स्वयं की प्रकृति के अनुकूल, सुपाच्य भोजन ग्रहण कर, सम्यक् चिन्तन और आचरण द्वारा तनाव के कारणों को दूर कर, साथ में परोक्ष रूप से शरीर में उपस्थित सहयोगी रोगों का उपचार कर, पेन्क्रियाज एवं अन्य अन्तःश्रावी ग्रन्थियों की क्षमता बढ़ा, प्राण ऊर्जा के प्रवाह को बाधित करने वाले विजातीय तत्वों को हटाकर डायबिटीज जैसे असाध्य रोगों को न केवल नियंत्रित ही रखा जा सकता है, अपितु स्थायी रूप से मुक्ति पायी जा सकती है।

चिकित्सा हेतु हिंसा अनुचित

किसी प्राणी को दुःख दिए बिना हिंसा, क्रूरता, निर्दयता हो नहीं सकती। जो प्राण हम दे नहीं सकते, उसको लेने का हमें क्या अधिकार? दुःख देने से दुःख ही मिलेगा। प्रकृति के न्याय में देर हो सकती है, अंधेर नहीं। जो हम नहीं बना सकते, उसको स्वार्थवश नष्ट करना बुद्धिमत्ता नहीं। अतः चिकित्सा के नाम पर प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप में हिंसा करना, कराना और करने वालों को सहयोग देना अपराध है। जिसका परिणाम भविष्य में भोगना पड़ेगा तथा ऐसी दवाओं के माध्यम से शरीर से जाने वाले उन बेजुबान प्राणियों की बद-दुआएँ की तरंगें शरीर को दुष्प्रभावों से ग्रसित करें तो आश्चर्य नहीं। अतः चिकित्सा की प्राथमिकता होनी चाहिए-अहिंसक उपचार।

-: चोरडिया प्रकाशन की पुस्तकें :-

(लेखक - डॉ. चंचलमल चोरडिया)

क्र.स.	विवरण	सहयोग राशि
1.	आरोग्य आपका ।	260 रु.
2.	स्वस्थ रहें या रोगी फैसला आपका ?	40 रु.
3.	शरीर स्वयं का चिकित्सक	15 रु.
4.	मौलिक चिकित्सा कौनसी	10 रु.
5.	भोजन और स्वास्थ्य	20 रु.
6.	क्या हम स्वस्थ रहना चाहते हैं ?	15 रु.
7.	आपका उपचार आपके पास	10 रु.
8.	पीने योग्य शक्तिवर्धक पानी	10 रु.
9.	प्रभावशाली स्वावलम्बी लीवर शुद्धिकरण चिकित्सा	10 रु.
10.	स्वास्थ्य का अमूल्य खजाना : मानव मूत्र	20 रु.
11.	UROPATHY	15 रु.
12.	Resetting of Disturbed LEG, SPINE & NAVEL	21 रु.
13.	आपका आरोग्य आपके पास	25 रु.
14.	प्रभावशाली अहिंसक चिकित्सा पद्धतियाँ (प्रथम संस्करण)	40 रु.
15.	सुखी जीवन का मूलाधार अहिंसक जीवन शैली	15 रु.
16.	प्रभावशाली उपचार हेतु सही निदान आवश्यक	10 रु.
17.	नाड़ी तंत्र एवं मांसपेशियों का उपचार ।	15 रु.
18.	बिना दवा मधुमेह (डायबिटीज) का प्रभावशाली उपचार	20 रु.
19.	मांसाहार कितना उचित ?	10 रु.
20.	स्वास्थ्य हेतु सम्यक् चिन्तन आवश्यक ।	10 रु.
21.	सजगता ही स्वास्थ्य है ।	10 रु.
22.	प्रभावशाली स्वावलम्बी उपचार ।	10 रु.
23.	स्वास्थ्य का दर्पण आरोग्य आपका	15 रु.
24.	निर्दोष, स्वास्थ्यवर्धक जीवन शैली	11 रु.
25.	हम कितने शाकाहारी ?	6 रु.
26.	निर्दोष श्रमणोपचार	15 रु.
27.	हम कितने अहिंसक ?	10 रु.
28.	भोजन हेतु पशु हिंसा अनुचित	10 रु.
29.	स्वास्थ्य मंत्रालय स्वावलम्बी चिकित्सा पद्धतियों के प्रति कितना सजग ?	20 रु.
30.	प्रभावशाली अहिंसक चिकित्सा पद्धतियाँ (संशोधित संस्करण)	45 रु.
31.	जीवन है अनमोल । (भजन संकलन)	20 रु.
(लेखिका - श्रीमती रतन चोरडिया)		
32.	आत्म-वैभव	25 रु.
33.	आपका उपचार आपके घर ।	25 रु.
34.	मृत्यु एक महोत्सव ।	15 रु.
35.	दो कदम लक्ष्य की ओर ।	11 रु.

(नोट : पोस्टेज एवं डिलेवरी शुल्क अतिरिक्त)